अंक : १२२

अप्रैल-जून २०१३

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

## कहानियां

डॉ. संतोष श्रीवास्तव • डॉ. निरुपमा राय

वंदना शुक्ला • मालती जोशी • अमर स्नेह

सागर सीपी • आमने- सामने

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ दिलीप भाटिया

१५ रुपये

अप्रैल-जून २०१३

(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

**प्रधान संपादक**

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

**संपादिका**

मंजुश्री

**संपादन सहयोग**

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

अशोक वशिष्ठ

हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●

**आजीवन** : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु., **वार्षिक** : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)

सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●

**ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.**

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●

**Namit Saksena,**

(M) 347-514-4222

**Naresh Mittal.**

(M) 845-304-2414

● **शिकागो संपर्क** ●

**Tulika Saksena**

(M) 224-875-0738

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध**●

**www.kathabimb.com**

e-mail : kathabimb@yahoo.com

***एक प्रति का मूल्य : १५ रु.***

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.

**(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)**

## कहानियां

महाकुंभ – **डॉ. संतोष श्रीवास्तव** ७

ज़िंदगी की भंवर में – **डॉ. निरुपमा राय** १३

ख़ानाबदोश – **वंदना शुक्ल** १७

हम दुखियारे जनम के – **डॉ.मालती जोशी** २३

बुझे रास्तों के पथिक – **अमर स्नेह** २९

## लघुकथाएं

प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः / **संजय कुमार** १२

दौड़ / **डॉ. राम निवास "मानव"** ४२

**"खिलौना" / महावीर सिंह चौहान** ४२

बंदर का न्याय / **डॉ. किशोर काबरा** ४२

अपना–अपना आकाश / **पुष्पा राव** ५०

## ग़ज़लें / गीत

दो ग़ज़लें / नवीन माथुर **"पंचोली"** १५

ग़ज़लें / **अशोक "अंजुम"**, विनय मिश्र २८

गीत / **रजनी मोरवाल** ३८

दो ग़ज़लें / **शरीफ़ कुरैशी** ४१

ग़ज़ल / **नरहरि अमरोहवी** ५०

## स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २

लेटर बॉक्स ४

"आमने–सामने" / **दिलीप भाटिया** ३५

"सागर–सीपी" / **वेद प्रकाश अमिताभ** ३९

"बाइस्कोप" ( *सविता बजाज* ) / **अज़ीम मलिक** ४३

पुस्तक–समीक्षा ४५

**आवरण चित्र : डॉ. अरविंद**

नक्की झील (मॉउंट आबू, राजस्थान).

**चित्रांकन : संदीप राशिनकर, इंदौर (म. प्र.)**

**मो.: ९४२५३१४४२२, ८०८५३५९७७०**

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

# कुछ कही, कुछ अनकही

यह "कथाबिंब" का १२२वां अंक है. पत्रिका ने अपनी लंबी यात्रा के दौरान मुद्रण-प्रणाली में काफ़ी परिवर्तन देखे और इन सभी बदलावों से तालमेल बनाये रखा. शुरू में एक-एक अक्षर (टाइप) लगा कर पूरा पेज़ बनता था जिसमें कोई भी परिवर्तन या संशोधन करना बहुत ही मुश्किल होता था. चित्रों के लिए ब्लॉक बनाने पड़ते थे. रंगीन चित्रों को छापने के लिए चार मौलिक रंगों के चार ब्लॉक बनते थे. पत्रिका एक छोटे प्रेस में छपती थी इस कारण पूरे अंक के प्रूफ एक साथ नहीं मिल पाते थे. इसलिए संपूर्ण अंक के सभी पृष्ठों का एकबारगी नियोजन कर पाना बहुत ही श्रमसाध्य कार्य हुआ करता था. कंप्यूटर के आ जाने से मुद्रण के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन आया. मुद्रण को सुविधाजनक बनाने के लिए आज अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं. सारा काम निजी कंप्यूटर पर भी हो सकता है. चित्रों के लिए ब्लॉक बनाने का झंझट ख़तम. चित्रों को छोटा-बड़ा कर सकते हैं. मैटर को भी आप किसी पेज़ से आगे-पीछे कहीं भी ले जा सकते हैं. इंटरनेट के प्रादुर्भाव ने ई-मेल द्वारा संपर्क करना और प्रकाशन के लिए रचना भेजना भी आसान कर दिया है. यहीं हम निवेदन करना चाहेंगे कि लेखक ई-मेल द्वारा रचनाएं भेजते समय कृपया डॉक फाइल के साथ पीडीएफ फाइल भी अवश्य भेजें. एक और प्रार्थना कि कृपया स्पीड पोस्ट से रचनाएं या समीक्षा के लिए पुस्तकें न भेजें. "कथाबिंब" त्रैमासिक पत्रिका है. सामान्यत: कहानी के निर्णय की सूचना देने में एक महीने का व छुट-पुट रचनाओं के निर्णय में दो से तीन माह का समय लग सकता है. "आमने-सामने" स्तंभ के लिए रचनाओं का स्वागत है. आत्म-कथ्य भेजने के पहले कृपया संपर्क करें.

●

हर अंक में हमारी कोशिश रहती है कि अलग-अलग शेड्स की कहानियां हम पाठकों तक पहुंचायें -- इस अंक की पहली कहानी (डॉ. संतोष श्रीवास्तव) की कथावस्तु अभी हाल में संपन्न *"महाकुंभ"* से ली गयी है. महाकुंभ के दौरान, देश-विदेश के कई करोड़ लोगों ने संगम नगर में अपना डेरा डाला था. एक प्रत्यक्षदर्शी की तरह लेखिका ने हमारे सामने पूरा परिदृश्य उद्घाटित किया है. विदेश में रहने वाली नायिका प्रियदर्शिनी के लिए सारा माहौल अनोखा है. महापर्व की पवित्रता नायिका के मन को भी अछूता नहीं रहने देती. डॉ. निरुपमा राय "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया नाम नहीं है. *"जिंदगी की भंवर में"* कहानी में अपनी चिरपरिचित शैली के साथ एक बार फिर लेखिका प्रस्तुत हैं. सामाजिक वर्जनाओं के चलते सुमन का विवाह समीर से नहीं हो पाता. सुमन आजीवन विवाह न करने का निर्णय लेती है. किंतु यहां भी समाज आड़े आता है और उसे मजबूरन निर्णय बदलना पड़ता है ... तदंतर वह भंवर में घिरती चली जाती है. अगली कहानी *"ख़ानाबदोश"* (वंदना शुक्ला) हमें एक अलग धरातल पर ले जाती है. मजदूर दूसरों के लिए घर बनाते हैं, विपरीत परिस्थितियों में बिना आधुनिक सुख-सुविधाओं के परिवार के साथ जीवन-यापन करते हैं. किंतु जैसे ही जब एक स्थान पर उनकी ज़रूरत पूरी हो जाती है उन्हें विस्थापित कर दिया जाता है. लेकिन इसे नियति मानकर उनके चेहरों पर कोई शिकन नहीं आती. अंक की चौथी कहानी (*"हम दुखियारे जनम के"*) की रचनाकार सिद्धहस्त लेखिका, मालती जोशी हैं. आज परिवारों में यह आम हो गया है कि शादी के बाद पुत्र मां-बाप से अलग रहने लगता है और अवसर मिलते ही विदेश-गमन. पिता की अपेक्षा मां के मन में अकेले रह जाने की चिंता हमेशा ही सालती रहती है. वह हमेशा परिवार में अपनी उपयोगिता दर्शाना चाहती है. इसके चलते अक्सर मां का व्यवहार असामान्य हो जाता है. फ़िल्म निर्माता, लेखक अमर स्नेह से भी पत्रिका के पाठक परिचित हैं. बंबई की अनेक कपड़ा मिलों के बंद हो जाने से बिना नौकरी के कितने लोग बेघर हो गये इसका अनुमान लगाना मुश्किल है. *"बुझे रास्तों के पथिक"* एक ऐसे परिवार की कहानी है जो धीरे-धीरे सड़क पर आ गया. जो भी मिला उसने बहनों का शारीरिक शोषण किया और भाई भी ऐसे पथ पर चल पड़ा जहां से वापस लौटना असंभव हो जाता है. अमर स्नेह फ़िल्म निर्देशक हैं इसलिए सारा घटनाक्रम फ़िल्मी है. लेकिन ऐसा मान कर सच से विमुख नहीं हुआ जा सकता.

●

कुछ प्रांतों में वर्ष के अंत तक विधान सभा के तथा अगले वर्ष लोकसभा के चुनाव होने हैं लेकिन सभी राजनीतिक दलों ने अभी से अपनी-अपनी बिसात बिछानी शुरू कर दी है. भाजपा ने गोवा अधिवेशन में नरेंद्र मोदी के हाथों में चुनाव प्रचार की बागडोर क्या सौंपी कि सारे राजनीतिक समीकरण गड़बड़ाने लगे. बुज़ुर्गवार नेता श्री लाल कृष्ण अडवानी पहले तो गोवा नहीं पहुंचे और फिर मोदी के नाम की घोषणा के तुरंत बाद इस्तीफ़ा दे दिया! इसके पीछे क्या रहस्य है, यह शायद कभी भी सामने न आने पाये किंतु नीतीश भाई को गठबंधन तोड़ने का एक अवसर

अवश्य मिल गया. सुना है आजकल कॉन्ग्रेस उन पर डोरे डाल रही है. झारखंड में राष्ट्रपति शासन के ख़तम होने के कुछ ही दिन शेष रह गये हैं. यहां भी कॉन्ग्रेस शिब्बू सोरेन की पार्टी के साथ गठबंधन करके सरकार बनाने की फ़िराक में है. इसीलिए कहा जाता है कि राजनीति में कुछ भी असंभव नहीं. दिल्ली में केज़रीवाल की आम आदमी पार्टी अभी से ज़ोर शोर से प्रचार में जुटी है. दिल्ली के चुनाव के परिणाम यह दर्शायेंगे कि अन्ना हज़ारे, बाबा राम देव, केज़रीवाल के आंदोलनों से जनमानस की सोच में कोई अंतर आया है अथवा नहीं?

आतंकवाद की तरह ही नक्सलियों से निपटने में भी सरकार पूरी तरह विफल रही है. नक्सली जब भी चाहते हैं अपने द्वारा चुने स्थान और समय पर हमला करते हैं और उनका बाल बांका भी नहीं होता. अभी हाल ही में छत्तीसगढ़ में अनेक स्थानीय कॉन्ग्रेसी नेताओं को नक्सलियों ने गोलियों से भून डाला. उनके वाहनों को बमों से तहस-नहस कर दिया. हमले में वरिष्ठ नेता विद्याचरण शुक्ल भी घायल हुए जिनका बाद में देहांत हो गया. कुछ दिनों तक अख़बारों और टीवी पर चर्चाएं होती रहीं –मिलेट्री को भेजना चाहिए कि नहीं, क्या करना चाहिए क्या नहीं. फिलहाल सारी बहसें अगले हमले तक स्थगित हो गयी हैं. चाहें कश्मीर हो या देश के अन्य क्षेत्रों में आतंकवाद का कहीं हमला हो तो फौरन "बाहरी ताकतों" से सूत्र जोड़े जाने लगते हैं. लेकिन नक्सली हमला करने वाले तो देश के अंदर ही हैं. ये वामवाद का पोषण करके रक्तरंजित क्रांति में विश्वास रखते हैं. इन्हें भटके हुए नहीं मानना चाहिए. देश के बहुत सारे तथाकथित बुद्धिजीवी इनका समर्थन करते हैं. नक्सलबारी से शुरू होकर आज पश्चिमी बंगाल, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश –यानी कि देश का लगभग आधा भूभाग इनके प्रभाव से ग्रसित है, उत्पीड़ित है. इसको किसी प्रांत की समस्या न मानते हुए केंद्र को एक समय सीमा तय कर देना चाहिए कि अमुक तारीख़, मान लें कि ३१ दिसंबर २०१३, तक सभी नक्सलियों को हथियार डाल देना होगा, तत्पश्चात बड़े पैमाने पर मिलेट्री कार्यवाही में किसी को बख़्शा नहीं जायेगा.आख़िर अपने ही देशवासियों द्वारा किये हमलों में कब तक, कितने पुलिस वाले शहीद होते रहेंगे!

छुट-पुट नक्सली हमलों की ख़बरें अक्सर आती हैं. लेकिन इनसे सरकारी तंत्र विचलित नहीं होता. हाल के बड़े नक्सली हमले से अभी देश पूरी तरह उबरा भी नहीं था कि १६ जून को उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में मूसलाधार बारिश से अचानक एक ज़लज़ला आ गया. किसी को संभलने का मौक़ा नहीं मिला. इस प्रलयंकारी सुनामी में महामार्ग, अन्य सड़कें, मवेशी, मकान, मंदिर, स्थानीय निवासी और चारधाम की यात्रा करने आये न जाने कितने यात्री बह गये. बच गया तो केवल पत्थरों से बना प्राचीन केदारनाथ मंदिर. इतनी बड़ी प्राकृतिक विपदा के समय भी राजनीतिक दल दावों-प्रतिदावों में उलझे हुए हैं. कितने लोग मरे और कितने अभी भी लापता हैं इसके सही आंकड़े किसी के पास नहीं हैं. मरे हुए लोगों के जान-माल को लूटने के भी समाचार मिले हैं. कुछ लोगों ने मरे हुए लोगों के अंगों से सोने-चांदी के गहने उतार लिये. इसमें कुछ साधू किस्म के लोग भी शामिल थे.

ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया कैसे पीछे रह सकता था. हर चैनल के रिपोर्टर निरंतर, चौबीसों घंटे "एक्सक्लूसिव" और "ब्रेकिंग न्यूज" देने में जुटे हुए हैं. हर छोटे-बड़े शहर में दुखी परिवारों के घर-घर इंटरव्यू लेने वालों की भीड़ लग गयी. "टॉक शोज़" में कारण खोजे जा रहे हैं – ग्लोबल वार्मिंग, बांधों का निर्माण आदि...आदि. विकास कार्य तो होने ही हैं चाहें देश का कोई भी भू-भाग क्यों न हो. लेकिन सरकार के पास क्या देश निर्माण की कोई समाकलित योजना है ? जब इन पहाड़ों पर नदियों के किनारे लोगों ने अनाप-शनाप भवनों, होटलों, धर्मशालाओं का निर्माण किया तो उस समय तो मात्र पर्यटन को बढ़ावा देना उद्देश्य रहा होगा. उसी समय रोक क्यों नहीं लगायी गयी ? देश के हर क्षेत्र का सत्वरता से विकास होना है किंत प्रकृति के साथ संतुलन रखकर.

देश की अर्थव्यवस्था दिन-प्रतिदिन खोखली होती जा रही है. पिछले तीन-चार महीनों में रुपये का अवमूल्यन तेज़ी से हुआ है. डॉलर ६० रु. से अधिक हो गया है. पहले से बढ़ी महंगाई पर इसका क्या असर होगा! हमारे अर्थशास्त्री, स्वच्छ छवि वाले प्रधानमंत्री क्या इसको लेकर चिंतित हैं ? मैं प्रधानमंत्री या वित्तमंत्री से पूछना चाहता हूं कि अठन्नी, एक रुपये, दो रुपये और पांच रुपये के आकारों में इतनी समानता क्यों ? फोन करने के लिए कौन-सा एक रुपये का सिक्का इसेतमाल किया जाये ? एक साधारण-सी बात समझना कि बिना आंख वाले या कम देखने वाले को इससे कितनी कठिनाई होती होगी क्या बहुत मुश्किल है. इसके लिए क्या किसी कमीशन के बैठने की आवश्यकता है ? हम हर बात मे अमेरिका की दुहाई देते हैं, वहां तो सालों-साल सिक्कों के आकार-प्रकार में कोई बदलाव नहीं होता.

अरविंद

# लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' के जनवरी-मार्च '१३ अंक में सर्वाधिक रोचक तथा सामयिक रही 'अपना अपना सुख' (मंजुश्री) कहानी. आजकल वृहत् पैमानों पर 'बाबागिरी' का धंधा भी ख़ूब फल रहा है. जब तक भारतवासी ऐसी तथाकथित धार्मिक प्रवृत्ति और संस्कारों के रहेंगे, यह धंधा ख़ूब फले-फूलेगा.

भारतीय ऋषि-मुनियों, तपस्वियों के प्राचीन संस्कारों और आदर्शों को इस ज़माने के अनुरूप नया ग्लैमर देकर पॉश संस्कृति में ढाल दिया गया है. आधुनिक बाबा लोग ख़ुद अपना भला अधिक करते हैं और ऐसे ही वातावरण में निर्मल बाबा सरीखे लोग भी ख़ूब पनपते हैं. भारतीय मानस इन लोगों से यदि ठगा हुआ भी जाता है तो भी वह अपनी श्रद्धा नहीं छोड़ता. कहानी के शिष्य लोग ही नहीं, रेल का टिकट चेकर भी इसी की गवाही देते हैं.

अन्य उल्लेखनीय कहानी लगी 'सामगुली' (मदन मोहन प्रसाद), नक्सलवाद का जो विष वृक्ष फल-फूल रहा है, उस पर लेखक ने सार्थक उंगली रखी है.

सुशांत सुप्रिय की कहानी सदैव की ही भांति उत्तम है. लगता है, यहां अपनी कथा ही लिख दी है. लेखक, पात्र सब आपस में गड्ड मड्ड हो गये हैं. बहरहाल सार्थक कथा के लिए उन्हें बधाई.

**_चंद्रमोहन प्रधान_**

*आमगोला, मुजफ़्फ़रपुर (बिहार)-८४२००२*

---

▸▸ 'कथाबिंब' का जन.-मार्च '१३ अंक प्राप्त हुआ. इस अंक में सर्वप्रथम सुखद आश्चर्य के साथ प्रसन्नता की अनुभूति मंजुश्री की कहानी 'अपना अपना सुख' देखकर हुई. महज इसलिए कि बरसों-बरस पश्चात उनसे इस रूप में साक्षात्कार का अवसर मिला. वैसे मैं उनकी लेखकीय प्रतिभा से तीस-चालीस वर्षों से परिचित हूं. अस्सी-नब्बे के दशक में उन्होंने कहानी के अलावा लघुकथा को भी अपनी क़लम का स्पर्श दिया था. उनकी अनेक लघुकथाएं 'आघात' में प्रकाशित ही नहीं चर्चित भी हुई थीं.

'अपना-अपना सुख' कहानी ऐशोआराम और बाज़ारवादी मानसिकता को जीवन की सफलता का सूत्र मानने वाले 'गुरु-शिष्यों' की निजी ज़िंदगी के क्षणों से साक्षात्कार कराती बेहतरीन कहानी है. देश में आज तक़रीबन प्रत्येक पीढ़ी का जन-सैलाब इस अंधभक्ति की गिरफ़्त में है. कहानी के कथ्य को इस तरह से बुना गया है कि पात्र का चरित्र उभर कर बिना किसी टिप्पणी के पाठक के मस्तिष्क में उभर आया. कहानी औत्सुक्य को बनाये रखकर ट्रेन की रफ़्तार से आगे बढ़कर बिना किसी गतिरोध के गंतव्य-स्टेशन पर जाकर खड़ी हो जाती है. मंजुश्री जी इसलिए भी बधाई की पात्र हैं कि उन्होंने जिस कथा-बीज का शिद्दत के साथ पल्लवन किया वह समकालीन कथा लेखिकाओं की विषय वस्तु से नदारद है.

यह कहानी पढ़ते हुए मुझे अपनी प्रथम प्रकाशित कहानी 'शंकर भगवान गिरफ़्तार' याद आ गयी. १९६५ में साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित यह कहानी अफ़ीम की तस्करी, शिवजी की मूर्ति आकार में करनेवाले चमत्कारी बाबा पर केंद्रित थी. कहानी का पूरा ताना-बाना भी ट्रेन के डिब्बे के इर्द-गिर्द बुना गया था.

आशा है कमलेश्वरजी की अनुजा-तुल्य का टूटा यह मौन कहानी लेखन की हलचल रूप में भविष्य में भी महसूस होता रहेगा.

डॉ. स्वाति तिवारी, विगत तीन-चार वर्षों से तेज़ी के साथ देश की विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं के लिए कहानियां लिख रही हैं. कथा वस्तु को दोहराव से बचाते हुए वे प्रत्येक कहानी के ऐसे पात्र की स्थिति या मानसिकता से परिचित कराती हैं जो ज़िंदगी को नये अर्थ में जी रहा है. इसमें महानगरीय आर्थिक संपन्नता से जी रहे आधुनिक चेहरे भी होते हैं और कौड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज़ ठेठ कस्बों-गांवों में रहनेवाले भी. इस अंक में प्रकाशित कहानी 'अंतराल' के सामान्य जन भी चिकित्सा के तथाकथित सेवालय में सहानुभूति को नज़र अंदाज करने की वजह से एक सामान्य वर्ग का परिवार कैसे उजड़ जाता है. इस हक़ीक़त को पूरी संवेदना के साथ स्वाति ने कथा-कैनवास पर लेखकीय क्षमता से चित्र किया है.

मदनमोहन प्रसाद की 'सामगुली' कहानी अपने नायाब कथ्य-शिल्प के कारण सायास आकर्षण केंद्र बनकर न जाने कितने प्रश्नों के उत्तरों के साथ पाठक के साथ जुड़ जाने का आग्रह करती है.

गीत-ग़ज़ल या कविताओं की बजाय अष्ठाना जी के नवगीत अधिक प्रभावित करते हैं. लघुकथाओं का चयन हर अंक की तरह इस बार भी बेहतर हुआ है.

और अंत में, आपके शब्दों में उस देश को सादर नमन जहां 'रोज़ बड़ी-बड़ी योजनाओं की घोषणा होती है. अरबों-ख़रबों का बजट पास होता है. पर स्थिति वही ढाक के तीन पात. मूलभूत समस्याओं का निवारण कैसे किया जाये. इस पर कोई कारगर योजना सामने नहीं आती.

***डॉ. सतीश दुबे***

*७६६, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९*

▶▶ जन.-मार्च '१३ का 'कथाबिंब' का अंक प्राप्त हो गया है. आभार. 'कुछ कही, अनकही' हमेशा की तरह महत्वपूर्ण मुद्दों पर आपका सार्थक तबसरा है. इस बार अंक की दो उपलब्धियां हैं एक – राजेंद्र तिवारी की ग़ज़लें एवं नवगीतकार मधुकर अष्ठाना का साक्षात्कार. राजेंद्र तिवारी तपस्वी ग़ज़लकार हैं, ख़ूब मंजे हुए, ख़ूब सुलझे हुए. चारों ग़ज़लें प्रभावित करती हैं. श्री अष्ठाना ने मधु प्रसाद के प्रश्नों के बेबाकी से स्पष्ट एवं सटीक उत्तर दिये हैं. गीत, नवगीत का अंतर बहुत बारीक़ी से स्पष्ट किया है. वे नवगीत को समर्पित स्थापित नवगीतकार हैं. उनके अनुसार 'प्रगतिवाद' के रसायन ने गीत को नवगीत बनाया है. उनके तीनों गीत सर्वथा पठनीय हैं.

***चंद्रसेन विराट***

*१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी,*
*इंदौर (म. प्र.)-४५२०१८*

▶▶ 'चल हंसा उस देश' का संदेश देता व नैनाभिराम चित्र से सज्जित 'कथाबिंब' का अंक १२१ मिला. संपादकीय में आपका वर्तमान हालात को बखानता व उस पर आपका सार्थक चिंतन विचारणीय है. कहानियों में सुशांत सुप्रिय की कहानी दो दिलों की संघर्षशील दास्तान प्रेम करनेवालों को एक सीख थी. डॉ. स्वाति तिवारी की कहानी 'अंतराल' संवेदना से भरपूर है. ग़रीबी व मज़बूरी के साथ-साथ स्वाति तिवारी ने शासकीय विभागों द्वारा आम जनता से किये गये व्यवहार की कलई खोल दी है. मंजुश्री की कहानी 'अपना-अपना सुख' वर्तमान बाबाओं का पाखंड उजागर करती है. भावनात्मक रिश्तों से लबरेज़ कहानी 'यही तो संसार है' में कमल कपूर ने पंडितों के व्यवहार को रेखांकित किया है. नक्सली समस्या पर मदन मोहन प्रसाद की कहानी अपने उद्देश्य में सफल रही. सभी लघुकथाएं व कविताएं स्तरीय रहीं.

आत्मरचना में डॉ. वासुदेव का जीवन संघर्ष पढ़कर यह साबित हो गया कि सोना जितना आग में तपेगा उतना चमक दमक बिखेरेगा. 'कथाबिंब' हमेशा इसी तरह साहित्य क्षुधा शांत करती रहे व शतायु हो!

***अर्जुनसिंह 'अंतिम'***

*सती विहार, धामनोद,*
*जिला-धार (म. प्र.)- ४५४५५२*

▶▶ 'कथाबिंब' नियमित रूप से पढ़ता आ रहा हूं. जनवरी-मार्च '१३ अंक मिला. मुखपृष्ठ पर सफ़ेद हंस का मनमोहक चित्र देखकर आनंद से भर गया. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपने दिल्ली के बलात्कार कांड की ओर सबका ध्यान दिलाया. लड़कियों के साथ बलात्कार की घटना होने का प्रमुख कारण है अश्लीलता. आज टीवी, कंप्यूटर, मोबाइल फ़ोन पर अश्लील फ़िल्मों के अंश भरे रहते हैं. जिन्हें देखकर आज के युवा और किशोर वर्ग ग़लत राह अपना रहे हैं. और ये युवा कामवासना से युक्त होकर विदेशी शराब के शौक़ीन भी होते जा रहे हैं. इस कारण लड़कियों को फब्ती कसना, अश्लील गाली देना, छेड़छाड़ करना, बलात्कार करना आम बात हो गयी है.

एक समस्या और भी है हमारे देश में. वह है भ्रष्टाचार. भ्रष्टाचार आज हमारे देश में अपनी जड़ें गहरे जमा चुका है. अन्ना हज़ारे, केजरीवाल और बाबा रामदेव जैसे शख़्स भी इससे मुकाबला नहीं कर पा रहे हैं. क्योंकि, हमारे देश की अधिकांश जनता ही भ्रष्ट हो गयी है. जनता को भ्रष्ट करने में हमारे नेताओं की भूमिका अहम है. नेताओं ने वोटरों को पैसा दे-देके, दे-देके अकर्मण्य बना दिया है. मुफ़्त के पैसे से कौन ऐश करना नहीं चाहेगा? 'कथाबिंब'

के इस अंक की सभी कहानियां, कविताएं, गीत व ग़ज़लें पसंद आयीं. पत्रिका में हमेशा उत्कृष्ट सामग्री रहती है और रहनी भी चाहिए. 'कथाबिंब' जैसी कथाप्रधान पत्रिका कम ही मिलती है. इस पत्रिका की विशेषता इसे पढ़कर ही जानी जा सकती है. पत्रिका में लघुकथाओं की कमी रहती है. 'आमने-सामने' में डॉ. वासुदेव की आत्मरचना पढ़कर प्रेरणा जगी है.

***प्रकाश भानु महतो***
*गांव-बड़पाली, पो.नेंगटासाई, वाया - सीनी,*
*ज़ि.-सरायकेला-खरसावां (झा.खं.)-८३३२२०*

▶▶हमेशा की तरह 'कथाबिंब' अंक मिला. मैं इसे क्रम से पढ़ता चला गया. कहानी 'सामगुली' यथार्थ के काफ़ी क़रीब लगी. मैं नक्सली या आदिवासियों के कृत्य अख़बार में तो पढ़ता-देखता था, मानवीय चेहरा तो इस कहानी से उजागर हुआ. 'यही तो संसार है' कहानी में निकट के रिश्तों ने जो दूरी बना दी थी वह दूर के रिश्तों ने कम कर दी. शायद ये मन के तार ही हैं जो अनजान लोगों में भी अपनी जगह तलाश लेते हैं. 'अपना-अपना सुख' में ढोंगियों, साधुओं आदि की अच्छी तरह ख़बर ली है, लेखिका ने. कहानी का संदेश यही है – हम ऐसे मुफ़्त का माल उड़ाने वालों से सावधान रहें. मैं 'बाइस्कोप' स्तंभ हमेशा देखता था लेकिन कभी ध्यान नहीं दिया. इस बार कमलेश पांडे के बारे में जानकारी मिली. विश्वास नहीं हुआ कि जो फ़िल्में मैं देख चुका हूं उसी कहानीकार की गतिविधियों से रूबरू हो रहा हू. आगे भी हम इस तरह की सामग्री पढ़ना चाहेंगे.

***दिलीप गुप्ता***
*छोटी बमनपुरी, बरेली (उ. प्र.)*

▶▶'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च '१३ अंक कल ही मिला. कहानियां पढ़कर निराशा हुई. पहली कहानी 'इश्क वो आतिश है गालिब' तो प्रेमकहानी के स्तर तक भी नहीं पहुंच पायी है. पूरी पोर्नोग्राफ़ी है. इससे तो बेहतर था कि ये लेखक कहानी न लिखकर ग़ज़ल ही लिखते.

'अपना अपना सुख' अच्छी कहानी बन सकती थी, मगर वह रिपोर्ताज़ और अख़बारी रपट बनकर रह गयी. 'यही तो संसार है' कहानी भी साधारण है, उपदेश ज़्यादा है. इन कहानियों से अलग 'सामगुली' कहानी नक्सलवादी आचरण पर आधारित है, मगर यह कल्पना और अतिरिक्त घटनाओं के बरक्स यथार्थ से दूर और प्रायोजित लगती है. 'अंतराल' कहानी फिर भी छोटी है, मगर ठीक है. 'कथाबिंब' के पृष्ठ भी कम हो गये हैं. इसे पुराने तेवर में लाने की ज़रूरत है. कहानी की यह पत्रिका दलगत विचारों से अलग स्वच्छ और सशक्त पाठकीयता से भरपूर रही है. कहानी लोगों से कहकर लिखवायें. बलात्कार जैसे विषय पर तमाम बहसें हो रही हैं मगर मूल कारण की ओर किसी की दृष्टि नहीं है. आधुनिक फ़ैशनपरस्त लड़कियों के आचरण और पोशाक की ओर ध्यान देना आवश्यक है.

***सिद्धेश***
*१/१७ आदर्शपल्ली, पो. रिज़ेन्ट एस्टेट,*
*कोलकाता-७०००९२*

▶▶'कथाबिंब' जन.-मार्च '१३ मिला. कहानियां तो हमेशा ही अच्छी होती हैं. इस बार भी मंजुश्री, कमल कपूर, डॉ. स्वाति तिवारी आदि सबकी कहानियां बड़ी मज़बूत रहीं. लघुकथाएं, गीत, ग़ज़लें आदि भी स्तरीय रहीं. आमने-सामने में डॉ. वासुदेव को पढ़ना अच्छा लगा. आत्म कहानी पढ़ कर लगता है कष्ट किसी न किसी रूप में सबको मिलता है और उसी में तप कर हीरा और निखरता है. डॉ. वासुदेव भी ऐसे ही एक नगीने हैं.

संपादकीय में नित-नये घोटालों की बात की गयी है. हां, भारत को अब अपनी साख बचाने की कोई परवाह नहीं. अभी हाल ही में भारत की रैंकिंग विश्व में १४१वें नंबर पर दी गयी है. यानी पतन की राह पर भारत तेज़ी से अग्रसर है. बहुत जल्द यह सबसे निचले पायदान पर होगा. काश! अपना भारत आज़ाद न हुआ होता और अंग्रेज़ ही शासन करते.

***माला वर्मा***
*हाज़ीनगर (प. बं.)-७४३१३५*

*▶▶'कथाबिंब' साहित्य में शब्द-शब्द अभिराम।*
*साहित्यिक संसार को यह शुभ तीरथ धाम।।*
*यह शुभ तीरथ धाम, नाम सम्मान बढ़ाये।*
*देकर सबको ज्ञान, ज्ञान से मान दिलाये।।*
*कहे इंदु 'कविराय' ये जन जीवन आदित्य।*
*बढ़े प्रगति पथ नित्य, शुभ 'कथाबिंब' साहित्य।।*

***रामेश्वर प्रसाद गुप्ता 'इंदु'***
*बड़ागांव, झांसी (उ. प्र.)-२८४१२१*

कहानी

# महाकुंभ

✍ डॉ. संतोष श्रीवास्तव

कड़कड़ाती ठंड और चारों ओर छायी धुंध में इलाहाबाद के मीलों फैले संगम तट पर संन्यासी अखाड़े के शाही जुलूस में भारी संख्या में नागाओं को देखकर अचंभित और चमत्कृत थी प्रियदर्शिनी. लगता था मानो धरती के विलक्षण प्राणी हैं वे. ऐसा उसने पहले कभी नहीं देखा था. इतने देश घूमी है वह पर ऐसा अद्भुत लोक पहले कहीं देखा ही नहीं. 'बाबाजी... ये कौन हैं?' उसने महंत जैसे दिखते त्रिपुंडधारी बाबा के पास जाकर पूछा.

महंत ने पल भर प्रियदर्शिनी के लंबे-लंबे सुनहले रेशमी बालों, बड़ी-बड़ी नीली आंखों, और तीखे नाक नक्शवाले रूप को देखा. वह जीन्स पर जर्सी पहने थी और कानों पर ऊनी कनटोपा. गले में दूरबीन लटक रही थी और हाथों में कैमरा. देशी-विदेशी संस्कृति के मिले जुले रूप को देख बाबा मुस्काये — 'ये नागा हैं.'

'नागा.' प्रियदर्शिनी ने उसी तर्ज़ पर दोहराया.

'हां, ये विदेह हैं. अपनी देह से परे जा चुके हैं. अपनी समस्त सांसारिक इच्छाओं से मुक्ति पा ली है इन्होंने.' महंत ने हाथ में पकड़ी रुद्राक्ष की माला के दानों को आंखों से छुआ और गले में पहन लिया. प्रियदर्शिनी की निगाहें रुद्राक्ष के दानों पर टिक गयीं. महंत ने माला के दानों को छुआ—'ये रुद्राक्ष पंचमुखी हैं. पांचों इंद्रियों के दमन का प्रतीक... शांति पाने का सहज मार्ग... आप भारतीय आध्यात्म को जानती हैं?'

'हां... मैंने पढ़ा है... गीता, रामायण, भागवत.... मैंने हिंदी और संस्कृत भी सीखी है.' प्रियदर्शिनी के होठों से हिंदी के वाक्य पहाड़ी झरने की तरह बह रहे थे.

'तब तो आप महर्षि विश्वामित्र को भी जानती होंगी? उनकी तपस्या को स्वर्ग की अप्सरा मेनका ने खंडित कर उनके अंदर कामेच्छा जगा दी थी. न वे बच पाये इस इच्छा से, न इंद्रदेव लेकिन ये नागा साधु... इन्होंने अपनी कामेच्छा पर विजय पा ली है.'

प्रियदर्शिनी के मुंह से निकला — 'ओह' और उसका मुंह खुला का खुला रह गया. मानो वह उन पुराणों के ऋषियों को साकार देख रही है बल्कि उससे भी अधिक सत्य... विलक्षण... अद्भुत... आह! इतने वर्षों से अपने प्रेम के जिन स्याह पन्नों को उसने अपने मन के तलघर में डाल दिया था, वे सहसा फड़फड़ाने लगे. माइक ने उसे वासनापूर्ति का साधन समझ जिस नारकीय पंक में गले-गले डुबोया था, उसमें एक भी प्रेमकमल न था. उसका दिल पंखुड़ी–पंखुड़ी टूटा था. और वह शांति, सुकून की तलाश में जर्मनी से भारत आयी थी.

सर्दीली हवा ने प्रियदर्शिनी के गाल, नाक ठंडे कर दिये थे. ऊनी टोपे से कुछ ज़िद्दी लटें कान के पास उड़ रही थीं. सामने गंगा का ठंडा-बर्फीला पानी ओर–छोर फैला था जिसमें सन्यासी अखाड़े के नंग-धड़ंग नागा साधु ईश्वर के नाम को बुदबुदाते हुए डुबकियां ले रहे थे. प्रियदर्शिनी सिहर उठी. कुंभ नगर की पवित्र फ़िज़ा में महात्माओं के श्लोक गूंज रहे थे. एक भव्य दृश्य... अखाड़ों का ऐसा जुलूस जैसा एक ज़माने में राजा महाराजाओं का निकलता था. इस जुलूस की भव्य शोभा यात्रा में शामिल नागाओं और महात्माओं की एक झलक पाने को लोग घंटों से प्रतीक्षारत थे. करोड़ों की भीड़, देश, विदेश के इतने यात्री... मॉरीशस, फीज़ी, हॉलैंड, सूरीनाम आदि देशों में फैले हज़ारों लाखों अप्रवासी भारतीयों के लिए यह महाकुंभ मानो, उन्हें अतीत में विचरण करा रहा था. इसी भारत से उनके पूर्वज सौ, डेढ़ सौ साल पहले इन देशों में मज़दूरी के लिए ले जाये गये थे. ब्रिटिश सरकार के गिरमिटिया इन अनजान वीरान द्वीपों पर लंबी समुद्री यात्रा और शारीरिक यंत्रणा के बाद लाये गये थे जिसे अपने श्रम से सींचकर उन्होंने हराभरा बनाया था. फिर उन्हें वहीं बस जाना पड़ा था. उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति और आध्यात्म की जो नींव रखी उनकी संतानें आज भी उसका पालन कर रही हैं. प्रियदर्शिनी की मां भारतीय हैं और पिता जर्मन. वह अपने बेहद व्यस्त माता-पिता की

२३ नवंबर, जबलपुर
एम. ए. (हिंदी, इतिहास), बी. एड., पत्रकारिता में बी. ए.

**प्रकाशन** : बहके बसंत तुम, बहते ग्लेशियर, यहां सपने बिकते हैं, प्रेम संबंधों की कहानियां (कथा संग्रह). मालवगढ़ की मालविका, दबे पांव प्यार, टेम्स की सरगम, हवा में बंद मुट्ठियां, (उपन्यास). मुझे जन्म दो मां (स्त्री विमर्श), फागुन का मन (ललित निबंध संग्रह) नहीं अब और नहीं (संपादित संग्रह), नीले पानियों की शायराना हरारत, (यात्रा संस्मरण).

**विशेष** : विभिन्न भाषाओं में रचनाएं अनूदित, पुस्तकों पर एम. फ़िल. तथा शाहजहांपुर की छात्रा द्वारा पीएच. डी., रचनाओं पर फ़िल्मांकन, कई पत्र पत्रिकाओं में स्तंभ लेखन व सामाजिक, मीडिया, महिला एवं साहित्यिक संस्थाओं से संबंद्ध, प्रतिवर्ष हेमंत फाउंडेशन की ओर से हेमंत स्मृति कविता सम्मान एवं विजय वर्मा कथा सम्मान का मुंबई में आयोजन.

**पुरस्कार** : आठ राष्ट्रीय एवं दो अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं पत्रकारिता पुरस्कार जिनमें महाराष्ट्र के गवर्नर के हाथों राजभवन में लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड विशेष उल्लेखनीय है. 'मुझे जन्म दो मां' पुस्तक पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की मानद उपाधि. भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय पत्रकार मित्रता संघ की ओर से प्रतिनिधि के रूप में १७ देशों की यात्रा.

अकेली संतान है. उसके देश में किसी भी नदी का ऐसा कोई संगम नहीं है जहां नियत समय, तिथि पर मौसम के तेवर को नज़र अंदाज़ कर डुबकी लगायी जाती हो. वहां कोई नागा साधु नहीं जिसने कामेच्छा पर विजय पा ली हो बल्कि उनके लिए एक दूसरे में लिप्त होने का शर्तिया साधन कामवासना ही है.

विदेशी सैलानियों के अलग तंबू थे. इन तंबुओं में मॉरीशस से आयी सुचेता, हॉलैंड से दीपा और सूरीनाम से आयी विशाखा थी.

'अब तो आप सब अपने-अपने देश की नागरिक हैं, भारत आपके लिए विदेश ही हुआ न?' प्रियदर्शिनी सुचेता के साथ उसके तंबू में चाय के लिए आमंत्रित थी. 'क्यों, भारत विदेश क्यों? हम मॉरीशस में रहते ज़रूर हैं पर हैं तो भारत के ही. कभी मॉरीशस आओ मैडम आपको लगेगा आप भारत में ही हैं. वहां गंगा तालाब को परी तालाब कहते हैं. किंवदंती है कि इस तालाब की टेकरी पर रात को परियां आकर बैठती हैं. गंगा तालाब ज्वालामुखी के फटने से प्रगट हुआ है. हमारे पूर्वजों द्वारा लाया इसी इलाहाबाद का गंगा जल उस पर छिड़ककर उस तालाब का नाम गंगा मां की स्मृति में गंगा तालाब रखा गया. शिवरात्रि के दिन गंगा तालाब से कांवरों में जल भर कर मॉरीशस के शिवमंदिरों में अभिषेक के लिए ले जाया जाता है. तालाब के किनारे तेरहवें ज्योतिर्लिंग का विशाल शिव मंदिर है लेकिन द्वार के नंदी पर अंगूठे और उंगली से गोल घेरा बनाओ तो उस नन्हें से गोल से भी विशाल शिवलिंग के दर्शन होते हैं.'

'चमत्कार... और उससे भी बढ़कर अद्‌भुत यह कि हज़ारों मील दूर रहते हुए और डेढ़ सौ वर्षों से छूटे अपने देश के प्रति आपकी ऐसी आस्था सुचेता!'

सर्द हवाओं के संग कहीं दूर बजते ट्रांजिस्टर के गीत बिल्कुल नज़दीक लग रहे थे...'गंगा मइया तोहे पियरी चढ़ईबूं... सैयां से कर दे मिलनवा...'

आसमान तारों से खचाखच भरा था और दीपा, सुचेता, विशाखा का दिल धार्मिक आस्था से. प्रियदर्शिनी अपने दिल को टटोलने लगी... अकेलापन उसने सारी उम्र झेला है... माता पिता की नज़दीकी को तरसती माइक के प्यार प्रदर्शन में ख़ुद को धन्य समझने लगी थी. क्या जानती थी कि भारतीय आध्यात्म पर अपनी थीसिस लिखते-लिखते वह माइक की हर वाजिब, ग़ैरवाजिब बातों को मानती जायेगी. माइक ने सिर्फ़ देह का साथ

निभाया जबकि प्रियदर्शिनी दिल दे बैठी उसे और फिर धोखे के जाल में फंसती पिछले दो सालों से मछली की तरह तड़प रही है. इसीलिए तो आयी है यहां ताकि थीसिस के लिए अनुभवों को जुटा ले पर वह उस संताप से मुक्त क्यों नहीं हो पा रही है? जबकि संगम तट पर तिल रखने की भी जगह नहीं है? रात गहरा रही थी लेकिन संगम तट का नज़ारा ऐसा था कि मानों रात ने आने से इंकार कर दिया हो. भक्ति, संगीत और साधना का संगम संजोये बहुरंगी रोशनी से नहाये तंबू... खुले रेतीले तट... जलते अलाव एक दूसरी ही दुनिया की सैर करा रहे थे.

'आज हमारे साथ डिनर लोगी प्रियदर्शिनी?' इतनी देर से साथ-साथ रहकर सभी आपसी आत्मीयता से भर उठे थे. प्रियदर्शिनी है भी बहुत मोहब्बती तभी तो माइक जैसे चालाक व्यक्ति के चंगुल में आसानी से फंस गयी थी. डिनर का इंतज़ाम भी सुचेता के ही तंबू में किया गया. सब गोल घेरा बनाकर बैठ गये. पत्तलों के ढेर से सबने अपने-अपने लिए दोने, पत्तलें चुन लीं. प्रियदर्शिनी आश्चर्य से पत्तल को उलट-पुलट कर देखने लगी. सुचेता ने पत्तल पर पानी छिड़ककर नेपकिन से पोंछा — 'ये पत्तलें पलाश के पत्तों को जोड़कर बनायी गयी हैं. पलाश होली के त्यौहार के समय फूलता है. चटख लाल रंग के काली डंडीवाले पलाश के फूल जब खिलते हैं तब इसके पेड़ पर एक भी पत्ता नहीं रहता. हर शाख़ फूलों से लदी, जैसे जंगल में आग लग गयी हो.' पत्तलों पर गरम-गरम सुनहली सिंकी पूड़ियां, आलू मटर की भुनी हुई सब्ज़ी, आम का अचार और दोने में खीर परोसी गयी. बर्लिन में ऐसा खाना ममा ने प्रियदर्शिनी के जन्मदिन पर बनाया था. उसे ममा की बेहद याद हो आयी. ममा ने उसकी हर ज़रूरतों को, हर इच्छाओं को पिता बनकर भी पूरा किया था क्योंकि उसके पिता घर में कोई रुचि नहीं लेते थे. उसे तो यह भी याद नहीं कि उसने उन्हें ममा के साथ डिनर या ब्रेकफ़ास्ट लेते कभी देखा हो. लंच में तो तीनों अपने-अपने काम से बाहर ही रहते हैं. वे कभी सप्ताहांत में बाहर भी नहीं गये जबकि उसकी ममा बहुत हंसमुख, ज़िंदादिल और मस्तमौला स्वभाव की है. माइक के संग दोस्ती को लेकर ममा ने ज़रूर एतराज़ किया था लेकिन प्रियदर्शिनी ने इसे तवज्जो नहीं दी थी. उसे यक़ीन था कि एक दिन ममा को वह माइक के लिए ज़रूर मना लेगी.

प्रियदर्शिनी कुछ विदेशी छायाकारों के संग संगम के शाही स्नान का नज़ारा वीडियो शूट कर रही थी. गंगा की लहरों पर सिर ही सिर दिखायी देते थे या फिर उथले पानी में कमर-कमर तक डूबे नागा साधु जो जुलूस की शक़्ल में हाथी, घोड़ों, रथों, पालकियों सहित पधारे थे. अचानक एक नागा साधु अपना त्रिशूल लेकर उस जापानी छायाकार के ऊपर झपटा जो सुबह से उसके साथ ही था. वह बचाने को दौड़ी. तभी और भी कई लोगों ने उनका त्रिशूल पकड़ लिया — 'बाबा क्षमा करें.' नागा लाल लाल आंखों से घूरने लगा — 'हमने मना किया न, कि हमारी फ़ोटो मत लो... धर्म-कर्म में रुकावट डालते हो?' जापानी थर-थर कांप रहा था. लोगों की क्षमा प्रार्थना से वह नागा लौट तो गया गंगा की ओर लेकिन क्रोध से उसके नथुने फड़कने लगे थे. जापानी युवक कुछ ही घंटों में अपने मोहक स्वभाव के कारण उसका दोस्त बन गया था. प्रियदर्शिनी की तरह वह भी आश्चर्यचकित था कुंभ नगर के अलौकिक परिवेश से. करोड़ों की भीड़ ने दोनों को ही आश्चर्य में डाल दिया था. कड़ाके की सर्दी को अंगूठा दिखाते श्रद्धालुओं के लिए गंगा का पवित्र जल मानो गरम पानी का कुंड बन गया था. आख़िर क्यों ये सब मौनी अमावस्या के दिन डुबकी लगाने को बेताब हैं. क्या कोई वैज्ञानिक तर्क है इसका?

सरस्वती नदी इतने वर्ष पहले ग़ायब हो गयी कि भूगर्भ वैज्ञानिकों को उसके मार्ग की खोज करने के लिये जीवाश्म और सैटेलाइट इमेजरी का अध्ययन करना पड़ा. न ही उसका विलोप होना इतना निकट है कि उसके अस्तित्व को तलाशा जा सके. लेकिन ऋचाओं में देवलोक की इन तीनों नदियों के स्वर्गिक संगम का महिमा गान मौजूद है. गंगा अपनी सुनहली लहरों के रूप में, यमुना काली लहरों के रूप में और सरस्वती धवल क्षीण धार सहित जब एक दूसरे के आलिंगन में समाती हैं तो मानों स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं. यह विश्वास ईसा से तीन हज़ार साल पहले से मौजूद है. कोई उत्तर नहीं है प्रियदर्शिनी के पास इस महान आस्था का. माइकल जैक्सन और मेडोना के शो में लाइट और साउंड के आधुनिक उपकरण सजाकर भी कभी इतनी भीड़ नहीं बटोर पाये प्रायोजक... गांव, देहात से सिर पर गठरी रखे लोग उमड़े पड़ रहे हैं... हर वर्ग का आदमी बस एक बार गंगा में डुबकी लगाने की इच्छा से चला आ रहा है. दो-दो, तीन-तीन महीने के शिशुओं तक को सर्द पानी में डुबकियां लगवा रहे हैं ये लोग.

सब कुछ सुन रखा था प्रियदर्शिनी ने... बताती थी

ममा कि भारत धर्म और आस्था का प्रतीक है. प्रियदर्शिनी की थीसिस का एक चैप्टर तो ममा के बताये धार्मिक क़िस्सों कहानियों का ही है. फिर भी ममा ठगी गयी थी अपने ही देशवासी नीरज कुमार से. बाक़ायदा शादी कर, विदेश के सपने दिखाता नीरज कुमार लंदन आते ही अजनबी बन गया था. ममा से छः महीने बाद ही उसने तलाक़ लेकर उन्हें अजनबी देश में अकेला छोड़ दिया था. ममा के लिए जीवन गुज़ारना और ज़िंदा रहने के लिए धन कमाना चुनौती बन गया था. कई बार भारत लौटने का प्रयत्न किया उन्होंने पर हर बार यह सोच कर वे रुक गयीं कि लौटकर क्या हासिल कर लेंगी वे? अपने छोटे भाई बहनों के लिए, उनके भविष्य के लिए क्या वे कांटा नहीं बन जायेंगी? क्या अपने असफल दांपत्य से वे मां बाप को आंसू और रुसवाइयां नहीं देंगी? ममा ने अपने ग़मों का प्याला चुपचाप पी लिया और चेहरे पर ख़ुशी का मुखौटा चढ़ाकर वे होटल में रिसेप्शनिस्ट हो गयीं. वहीं उनकी मुलाक़ात डैड से हुई. डैड कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं... शांत, गंभीर और किताबों में डूबे रहनेवाले. वे बहुत कम सामाजिक कामों में हिस्सा ले पाते... सोशल तो बिल्कुल भी नहीं हैं. घर में उनकी मौजूदगी उनकी लाइब्रेरी में ही रहती है और ममा कॉफ़ी के प्याले दिन भर वहां पहुंचाती रहती हैं. किंतु वे ख़ुश हैं डैड से शादी करके... उनके हरे भरे कुंज में बने ख़ूबसूरत बंगले से और कुंज की दीवार से टिकी उनकी साइकल से... शानदार गाड़ी है फिर भी वे साइकल से कॉलेज जाते हैं. अब तो ममा भी साइकल से ही ऑफ़िस जाती हैं. ममा भी अब स्कूल में पढ़ाती हैं.

'कहां से आये हो?' अधलेटे चिलम फूंकते नागा साधु ने प्रियदर्शिनी और जापानी से पूछा — 'मैडम जर्मनी से आयी हैं, प्रियदर्शिनी नाम है इनका', जापानी ने हिंदी में कहा तो प्रियदर्शिनी ताज्जुब से जापानी को देखने लगी. वह खिलखिलाकर हंस दिया. ... 'सरप्राइज़ न?'

'चिलम पियोगी? लो, एक सुट्टा मारो और हमारे पैर दबाओ.'

प्रियदर्शिनी ने साधु की ही चिलम से सुट्टा मारा. पैर छूने और पैर दबाने की यह परंपरा जब वह यहां आयी तभी से देख रही है. उसे अटपटा नहीं लगा. वह साधु के पैर दबाने लगी. काले... आबनूस से चमकते पैर... शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं. प्रियदर्शिनी के कोमल हाथों के स्पर्श से माइक बेक़ाबू हो उठता था और उसे दबोच लेता था. वही स्पर्श साधु में कोई उत्तेजना न जगा सका. सचमुच ये विदेह हैं, इन्हें देह का ज्ञान नहीं.

साधु उठकर बैठ गया. पीठ पर बिखरी जटाओं को समेट कर सिर पर बांधते हुए बोला— 'लो, पीठ भी मल दो.' मौक़ा देखकर जापानी ने कहा — 'बाबा, मैडम के साथ अपना एक फ़ोटो खींच लेने दीजिए न?'

साधु ने अलमस्त हो आसमान की ओर निग़ाहें उठायीं — 'खींच लो, खींच लो. यह शरीर तो मिट्टी में मिलना ही है. तुम्हारा कैमरा हमारी आत्मा की फ़ोटो तो खींच नहीं सकता और आत्मा का उद्धार होता है इच्छाओं के त्याग से...'

*गंगा के नहाये से कौन नर तर गये,*
*मीनहु न तरी जाको जल ही में वास है.*

प्रियदर्शिनी भावविह्वल हो साधु के चरणों पर गिर पड़ी. मन ही मन कहने लगी — 'मुझे शांति चाहिए बाबा.' साधु ने उसके सिर पर हाथ फेरा — 'उठो, अपनी इच्छाओं का त्याग करो पहले.'

उसे ममा की याद सताने लगी. उसे डैड भी बहुत याद आये, एक बार चुपके से उसने ममा की डायरी पढ़ ली थी और उसके पैरों के नीच से ज़मीन खिसक गयी थी. तबसे वह न चैन से सो पा रही है न दिन गुज़ार पा रही है. जिस माइक को उसने तहेदिल से चाहा है अब उसके अवगुण उसे बिलोते रहते हैं... काश वह नहीं जान पाती कि डैड उसके असली डैड नही हैं. वह नीरज कुमार की बेटी है जिसके अंकुरित होते ही नीरज कुमार ने ममा को त्याग दिया था. ममा ने बताया था कि किस तरह विदेश के आकर्षण में उसके नाना, नानी और परिवावालों ने बिना सोचे समझे ममा को नीरज कुमार के संग ब्याह दिया था. ममा तब एम.ए. की पढ़ाई कर रही थी. लंदन के आकर्षक प्रस्ताव में सभी की रज़ामंदी थी. शादी के तीन माह बाद ममा भी इम्तहान देकर लंदन आ गयी. शादी की ख़ुमारी अभी उतरी भी नहीं थी कि वक़्त ने बता दिया कि ये शादी मात्र एक छलावा थी. विदेश में पैर जमा लेने की पुख़्ता साज़िश. भविष्य का भटकाव सामने था लेकिन मातृत्व का मीठा एहसास मन को बार-बार इस ओर खींच लेता कि उसे बच्चे को जन्म देना है. उसके दुर्भाग्य में बच्चे का क्या दोष? जिस होटल में ममा रिसेप्शनिस्ट थीं वहीं जर्मनी से इंग्लैंड

की सैर करने आये सैलानियों का दल रुका था. डैड उन्हीं में से एक थे.

'क्या आप मुझे शॉपिंग करने में मदद करेंगी?' उनके पूछने पर ममा तैयार तो हो गयीं लेकिन दो दिन बाद... तब उनकी छुट्टी थी. ग्राहकों को संतुष्ट करने का पाठ रिसेप्शन का जॉब लेते समय मैनेजमेंट की ओर से उन्हें पढ़ा दिया गया था. शॉपिंग के बाद कॉफ़ी पीते हुए ममा ने डैड के पूछने पर सब कुछ बता दिया था. थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद उन्होंने पूछा — 'क्या आप लंदन छोड़ने को तैयार हैं?'

'नहीं मैं भारत लौटना नहीं चाहती. मेरे माता-पिता मुझ पर जो गुज़री है उसे सह नहीं पायेंगे. मेरी दो छोटी बहने हैं उनका भविष्य भी ख़तरे में पड़ जायेगा.

'बहुत अच्छी सोच है आपकी लेकिन मैं इंडिया लौटने की बात नहीं कर रहा हूं अपने साथ बर्लिन ले जाने की बात कर रहा हूं.' ममा चौंक पड़ी थीं —'बर्लिन?... इतनी जल्दी आपने मेरे बारे में इतना कुछ कैसे सोच लिया?' डैड मुस्कुरा कर रहे गये. रात के ग्यारह बजे डैड का फ़ोन आया — 'किसी की तरफ़ आकर्षित होने या प्यार होने में क्या बरसों लगते हैं?'

ममा के पास जवाब नहीं था. टूटी नौका और तूफ़ानी लहरें सोच, समझ पाने का मौक़ा ही कहां देती हैं?

प्रियदर्शिनी का जन्म बर्लिन में हुआ. नर्सिंग होम में पालने में लेटी प्यारी सी बच्ची को डैड ने गोद में उठाना चाहा था. ममा मुस्कुरा कर रह गयी थीं — 'दुनिया में शायद यह पहला वाक़या है जब एक गर्भवती औरत के सामने कोई प्रेम का प्रस्ताव रखे.'

'क्योंकि, जब मेरी बहन मेरी मां के गर्भ में थी तब सीढ़ियों से गिर जाने की वजह से उनकी मृत्यु हो गयी थी. उनकी आंखों में वही कामना थी जो मैंने तुम्हारी आंखों में देखी. तुम्हें अपनाकर मैंने मां के प्रति अपने प्रेम का सबूत दिया है न?'

ममा की आंखें छलक आयी थीं.

☐

'आज हमारी यहां आख़िरी रात है.... चलो मिलकर सेलिब्रेट करते हैं.' सुचेता प्रियदर्शिनी और उसके नये जापानी दोस्त को दावत दे रही थी. सुचेता के तंबू में उसके पति सुरेंद्र पहले से मौजूद थे. थोड़ी देर में विशाखा और दीपा भी आ गयीं. सब कल अपने-अपने देश लौट जायेंगी. जापानी वृंदावन घूमने चला जायेगा. सुरेंद्र ने सबके लिए रम का एक-एक पैग बनाया.

'मैं नहीं पियूंगी. ये धार्मिक जगह है. यहां इसका निषेध है.'

'यह तो ठंड से बचने की दवा है.... देखो, साधु लोग कैसे भांग, चिलम में डूबे रहते हैं.' कहते हुए सुरेंद्र ने सबके हाथ में गिलास थमा दिये. चीयर्स कहते हुए आपस में गिलास टकराये — 'भविष्य में हम फिर मिलें इस कामना के साथ.'

☐

सुबह चाय नाश्ते से निपटकर सभी ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया. मथुरा तक जापानी भी साथ हो लिया. संगम की रेत पर अकेली खड़ी रह गयी प्रियदर्शिनी.

☐

तड़के सुबह प्रियदर्शिनी की आंख खुल गयी. आज उसे भी दिल्ली लौटना है. कल उसकी बर्लिन वापिसी की टिकट है. तंबू के गेट से बाहर झांकते ही वह विस्मित रह गयी. त्रिवेणी की लहरों पर हज़ारों की तादाद में पक्षी पंख फड़फड़ाकर विचरण कर रहे थे. कोहरे की चादर ज़मीन आसमान एक किये थी लेकिन कुंभ नगर की रोशनियों ने कोहरे की धुंधलाहट कम कर दी थी. प्रियदर्शिनी त्रिवेणी की ओर अपना कैमरा लेकर तेज़ी से चल दी. मेलार्ड और सुर्ख़ाब पक्षियों के झुंड उसके कैमरे में क़ैद होते चले गये. आज उसे गंगा में नीरज कुमार और माइक का तर्पण भी करना है. मिटा देना है अपनी ज़िंदगी से उन्हें. सुना है गंगा में तर्पण के बाद मनुष्य दुबारा नहीं लौटता धरती पर.... उसे भी नहीं चाहिए इन दोनों की वापिसी. उसने सुरक्षित स्थान पर अपना शोल्डर बैग रखा और त्रिवेणी के जल में नाक पकड़कर डुबकी लगायी. पानी कमर तक था और सामने उगता सूरज... उसने अंजली में जल भरा... हे प्रभु मेरे जन्मदाता के पापों को क्षमा करना, माइक के पापों को क्षमा करना.... यह कैसी प्रार्थना? ये बोल उसके होठों से क्यों फूटे? क्या यही आध्यात्म का गूढ़ रहस्य है? वह तो तर्पण करने आयी थी और?.... उसके बालों से चेहरे पर टपकती जल की बूंदें अपने संग उसकी अश्रु बूंदें भी ले चलीं!

**✉ २०४, केदारनाथ को. हॉ. सो. सेक्टर-७,**
**चारकोप बस डिपो के पास,**
**कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.**
**मो. ९७६९०२३१८८**

लघुकथा

# प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः

✍ संजय कुमार

पहली दफ़ा अपनी पत्नी के साथ श्रीनगर गया. कश्मीर यानी धरती की जन्नत. मन में बड़ा उत्साह था कि इस टूर में ख़ूब फ़ोटो खींचूंगा और अपने अख़बार के लिए ढेर सारे लेख और संस्मरण तैयार करूंगा. लाल चौक की बगल की सड़क पर एक अच्छे होटल 'वैष्णव' में अपना डेरा जमाया. फिर नहा-धोकर फ्रेश होने के बाद सोचा जरा शिकारे पर बैठ डल झील की ख़ूबसूरती निहारी जाये. किनारे पर पहुंचते ही चार-पांच शिकारे वाले हमें आमंत्रित करने लगे. तभी एक बुज़ुर्ग शिकारेवाले ने बड़ी आज़िजी से आवाज़ लगायी, 'आओ बाबू जी, सलीम ख़ान के शिकारे पर आओ. इसी शिकारे में शम्मी कपूर और शर्मिला टैगोर ने 'कश्मीर की कली' की शूटिंग की थी. शशि कपूर ने 'जब-जब फूल खिले' फ़िलिम में हमारे शिकारे पर ही बैठकर, 'परदेशियों से न अंखियां मिलाना....' गाना गाया था ....!! मेरा पत्रकार मन उसके अनुभव जानने के लिए कुलबुलाने लगा. मैंने पाकेट से नोट बुक निकाली और बिना एक पल गंवाये पत्नी के साथ उसके शिकारे पर सवार हो गया.

हमारे शिकारे के डल झील में बढ़ते ही कई नावें अगल-बगल में साथ चलने लगीं. कोई अपने केसर की तासीर बता रहा था तो कोई कश्मीरी ड्रेस में फोटोग्राफी कराने की पेशकश कर रहा था. मेरी पत्नी कश्मीरी परिधान में फ़ोटो खिंचवाने में व्यस्त हो गयी. इधर मैं सलीम खान के अनुभवों को नोट करने में जुट गया. मैं लुब्ध श्रोता की तरह उसकी बातें सुन रहा था और साथ-साथ उन्हें नोट भी किये जा रहा था. दो घंटे की इस सैर मे उसने ढेरों किस्से सुनाये. 'आन मिलो सजना' के आशा पारेख की, 'शर्मिली' की राखी की, 'दाग़' के राजेश खन्ना की...! मैं गदगद था. किनारे पर लौट कर सलीम ख़ान और उसके ऐतिहासिक शिकारे की कई एंगिल से तस्वीरें उतारीं.

फिर उसके मेहनताने के अलावा पांच सौ का एक नोट उस बतौर इनाम दिया. सलीम ख़ान फिर किसी दूसरे सवार को बैठाकर फेरी पर निकल पड़ा.

मैंने अपना सामान समेटते हुए उत्साह से भरकर अपनी पत्नी से कहा, 'चलो यार, पहले ही दिन एक शानदार आर्टिकल तैयार हो गया.'

'बाबूजी, जरा एक मिनट सुनना,' तभी पीछे से एक दूसरे शिकारे वाले ने आवाज़ लगायी. मैं उसके करीब गया तो वह बोला, 'सलीम ख़ान की कहानियों पर ऐतबार मत करना. वह आप जैसे भोले-भोले टूरिस्टों को ऐसे झूठे क़िस्से सुना-सुनाकर ठगता रहता है. उसके शिकारे में कोई शूटिंग-वूटिंग नहीं हुई.' अगल-बगल के नाविक भी उसकी बात को सच बता रहे थे. मुझे काटो तो ख़ून नहीं.

मैं भारी मन से पत्नी के साथ होटल की तरफ निकल पड़ा. मेरे साथ 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी.

✉ वरिष्ठ उप संपादक, हिंदुस्तान,
राम आशा सदन,
सर्वोदय नगर, पो. शास्त्रीनगर,
पटना-८०००२३.
मो.: ९९३९३००४३८

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमे आपके पत्रों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

कहानी

# ज़िंदगी की भंवर में

डॉ. निरुपमा राय

प्रिय समीर,
शुभाशीष!

सुमन से मिलकर अभी ही लौटी हूं... तुम्हारा आग्रह टाल नहीं पायी. पर... जिस सुमन से मिलकर पहले जीवन के स्पंदन से भर उठती थी, आज उससे मिलकर दु:ख के अगाध सागर में डूब सी गयी, लगा एक साहसी और उन्नतिशील लड़की, जिसने हमेशा अपनी शर्तों पर जीवन जीने की ठानी थी, आज अपने ही चुने पिंजरे में क़ैद होकर कसमसा रही है. हां! तुमने ठीक सुना था, उम्र के इस पड़ाव पर, अपने से बीस वर्ष बड़े व्यक्ति से उसने सचमुच विवाह कर लिया है. कारण जानते हो? नहीं न...? बस उसे ही मूर्ख, सनकी, मतलबी और न जाने क्या-क्या कहा था तुमने. तुम ही ने कहा था न, सुमन ने उस व्यक्ति के वैभव से विवाह किया होगा... उसका भव्य बंगला और होंडा सिटी गाड़ी उसे भा गयी होगी. पर ऐसा कुछ नहीं है. वो तो एक ऐसे भंवर में फंस गयी है, जहां से निकलने का प्रयास उसे कई विडंबनाओं से साक्षात्कार करने पर विवश कर देगा. समीर, तुम तो सुमन से प्रेम करते थे न? फिर ऐसी एकांगी सोच क्यों? क्या हर विपरीत परिस्थिति के लिए स्त्री ही दोषी होती है?

तुम यही सोच रहे हो न तुमसे विवाह करने से, इंकार करनेवाली और आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय लेनेवाली सुमन ने ऐसा क्यों किया? कभी-कभी इंसान न चाहते हुए भी ऐसा बहुत कुछ कर जाता है जो उसके जीवन का मर्म ही पलटकर रख देता है. सुमन से मैं भी बहुत प्यार करती हूं. भैया.... आज मुझे सामने पाकर उसकी संचित पीड़ा का बांध टूट सा गया... मैं मौन रह गयी.... सांत्वना के शब्द आत्मा में ही दफ़न हो गये. एक शहर में रहते हुए भी मैं उससे दस साल बाद मिल रही थी... तुम्हारी शादी में ही मिली थी न.... फिर सब अपने आप में व्यस्त होते गये थे... और फिर अचानक उसकी शादी की सूचना... सोचा मिलकर आशीष दे आऊं... पर जा नहीं सकी. ... मैं उसके विवाह को भी एक आम विवाह जो समझ रही थी... तुम्हारे कहने पर आज नहीं जाती तो स्त्री पीड़ा का एक दु:खद अध्याय कैसे खुलता? एक कटु सत्य पिघलकर कैसे बहता?

'दीदी! आप...?' सुमन ने आश्चर्यमिश्रित ख़ुशी से मुझे गले लगा लिया था.

'झूठा प्यार मत कर सुमन, इतना ही प्यार था तो तेरी शादी की ख़बर किसी और से क्यों मिली?'

'दीदी! सब कुछ इतना अचानक हुआ कि...' न जाने क्यों वो असहज सी लगने लगी थी.

'तू ख़ुश तो है न?'

'नहीं!' उसने दो टूक जवाब दिया तो मैंने स्नेह से उसका हाथ पकड़कर पूछा, 'फिर शादी क्यों की?'

'मां की इच्छा का पालन किया... वो चाहती थीं मेरा भी घर बस जाये. वो बहुत बीमार रहने लगी हैं. जब तक पापा थे... सब कुछ ठीक चल रहा था... उनके जाने के बाद मैं एक स्कूल में पढ़ाने लगी... ट्यूशन की.... किसी तरह दोनों भाइयों को पढ़ाया... फिर वही हुआ जो होता आया है.... दोनों अच्छी नौकरी पा गये.... विवाह किया और पत्नियों के साथ अलग घर बसा लिया... मैं और मां सूने घर में नितांत एकाकी रह गये. मां बार-बार शादी के लिए लड़के देखती... मैं ख़ूब झगड़ती... टालती जाती... नहीं करनी है मुझे शादी... पैंतीस वर्ष गुज़ार चुकी हूं... आगे भी हम दोनों मां-बेटी गुज़ार लेंगे... मां कहतीं, बेटा! मेरे बाद कैसे रहेगी तू? तेरे भाई मेरे रहने पर तुझे नहीं पूछते बाद में क्या पूछेंगे? मत पूछें...! मैं कह तो देती पर मां के बाद अपने एकाकी प्रयोजनहीन नीरस जीवन की कल्पना मुझे भी सिहराने लगी थी.'

मैं चुपचाप सुन रही थी. वो चाय बनाने अंदर गयी तो मैं ध्यान से उसका घर देखने लगी. भव्य... बड़े से बंगले में संपूर्ण वैभव विद्यमान था... शायद सुमन बेहद आरामदायक

शांत-संतुष्ट जीवन जी रही है मैं सोच रही थी और मेरे मन में उसका कहा एक शब्द भी चुभ रहा था...

'नहीं.'.....

'दीदी! चाय लीजिए', उसने चाय का कप देते हुए कहा तो मैं वर्तमान में लौटी.

'घर तो बड़ा सुंदर है सुमन.... तेरे पति कैसे हैं? पहली पत्नी को गुज़रे कितना समय हुआ? बच्चे कितने हैं उनके?' मैंने एक साथ कई प्रश्न कर डाले थे.

'एक साल हुआ है उन्हें गुज़रे.... एक बेटा है जो पत्नी के साथ कनाडा में हैं....'

'क्या? मैं तो सोच रही थी छोटे-छोटे बच्चों के लिए दूसरी शादी की होगी.... बहू भी है... और इस उम्र में...!'

'उन्होंने सिर्फ़ घर का बना खाना खाने के लिए घर व्यवस्थित करने के लिए और कभी-कभार अपनी शारीरिक ज़रूरतें पूरी करने के लिए मुझसे शादी की है... यह मैं नहीं, वो कहते हैं. प्रतिदिन इसी अहसास के साथ मेरी सुबह होती है कि मैं इस बड़े से बंगले में 'केयरटेकर' हूं किसी की पत्नी नहीं.'

'मतलब?'

वो फूट-फूटकर रो पड़ी, 'जानती हैं दीदी! कल उन्होंने मुझसे कहा कि मैं पंद्रह दिनों के लिए मां के पास चली जाऊं क्योंकि एक हफ़्ते बाद उनका बेटा कनाडा से घर आ रहा है... और .... और वो मेरी सूरत भी देखना नहीं चाहता. मैं सन्न रह गयी. आख़िरकार मैं उनकी विवाहिता पत्नी हूं, पूरे समाज के सामने उन्होंने मेरा साथ देने का वचन दिया है ... सिंदूर भरा है मेरी मांग में... यह क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं? मैं जोर से चीख़ पड़ी थी.

'ये प्रलाप नहीं सच है... मेरा बेटा तुम से मिलना नहीं चाहता... और मैं नहीं चाहता कि वो अपने पिता के घर से दु:खी होकर लौटे. मेरे पति ने सपाट स्वर में कहा तो मैं संज्ञाशून्य सी खड़ी रह गयी. आत्मा में जैसे बहुत कुछ टूटकर चुभने लगा था. मैंने पूछा, 'मेरी क्या हैसियत है आपकी ज़िंदगी में ज़रा यह भी समझा दीजिए?'

'ठीक है, तुम मेरी पत्नी हो... मैं जीवन भर रोटी कपड़ा और छत तो दूंगा ही... तुम्हें रोड पर तो नहीं छोड़ रहा न... ? रवि को अपनी मां से बहुत लगाव था, वो उसे कभी भूल नहीं पायेगा... और न किसी दूसरी को मां का दर्जा दे सकेगा, मैं अच्छी तरह जानता हूं.'

**कथाबिंब के हितैषी एवं नियमित लेखिका**

'पर सच्चाई तो यही है न, कि अब मैं ही उसकी मां हूं... उसे घर आने तो दीजिए, मैं इतना स्नेह और अपनापन दूंगी कि वो मुझे मां ही समझकर वापस लौटेगा.' मैंने मन की सभी आशाओं को समेटकर पति से विनती की... पर जानती हैं दीदी, उनका स्पष्ट उत्तर था, 'ऐसा कभी नहीं होगा... वो तुमसे नफ़रत करता है.'

'नफ़रत! ऐसा क्या किया है मैंने?' मैं अवाक रह गयी थी. उन्होंने कहा, 'उसे लगता है कि तुमने मुझसे नहीं मेरी संपत्ति से विवाह किया है.'

'पर यह तो सच नहीं है आप जानते हैं न?'

'हां! पर वो यही मानता है.'

'लेकिन, आप उसे सच बता तो सकते हैं न?'

'मैं किसी की सोच नहीं बदल सकता.' मेरे पति ने कहा तो मैं जड़ हो गयी दीदी! सच कहूं तो इस विवाह से मुझे केवल दर्द मिला है और कुछ नहीं.' .... वो बताती गयी.... रोती गयी.... मैं चुपचाप सुनती रही .... एक चलचित्र-सा मानो सामने चलता चला जा रहा था....

मां के लाख समझाने से और भाइयों के कहने पर सुमन जब सिविल इंजीनियर सुबोध से मिली तो उसके कुंवारे मन में भी अभिलाषाओं के अंकुर फूटने लगे थे.

'मां ठीक कहती हैं, अकेलापन भविष्य में मेरे जीवन को दंश से भर देगा... और सुबोध मुझे एक सुदृढ़ भविष्य दे सकते हैं. एक छोटा बेटा है... उसे इतना प्यार दूंगी कि मां की कमी महसूस ही नहीं होगी.' पर इंसान का अपना सोचा कब होता है? नियति के पत्तों पर तो दुनियां चलती है.. और नियति ने जब पहला पत्ता फेंका तो सुमन

## दो ग़ज़लें

नवीन माथुर 'पंचोली'

हंसना हमको आया जब,
जी थोड़ा बहलाया जब ।

अपना सब कुछ अपना है,
यह कहना झुठलाया जब ।

अश्कों से रिश्ता जाना,
मन इनमें नहलाया जब ।

जीत गये हम अपनों से,
ग़ैरों ने अपनाया जब ।

नाम हमारा चल निकला,
अपना मोल चुकाया जब ।

थोड़ी-थोड़ी ख़ुशियां पाना अच्छा है,
रोते-रोते चुप हो जाना अच्छा है ।

यूं तो कितने ख़्वाब सुहाने देखे हैं,
इक सपने का सच हो जाना अच्छा है ।

जीवन में सौगातों की हद मत पूछो,
थोड़े में ही मन समझाना अच्छा है ।

आप अकेले राह जहां अंधेरी हो,
इक जुगनू का पीछे आना अच्छा है ।

हमने गीतों से जो दर्द सुनाया है,
आंखें उनकी नम हो जाना अच्छा है ।

अमझेरा, जि. धार (म. प्र.)-४५४४४१. मो. ९८९३११९७२४

के पांव तले ज़मीन ख़िसक गयी. एक सादे समारोह में विवाह संपन्न हुआ... घर पहुंची तो ड्राइंगरूम में सजी ख़ूबसूरत फ्रेम में जड़ी, एक युवक की तस्वीर देखकर उसने पूछा, 'यह कौन है?' और उत्तर सुनकर सन्न रह गयी... फिर थरथराते शब्दों में कहा, 'पर.... आपने तो कहा था आपका बेटा छोटा-सा है...'

'यह कितना भी बड़ा हो जाये, मेरे लिए तो बच्चा ही रहेगा न...? वैसे मेरी बहू भी बहुत सुंदर है... जल्द ही दादा बनूंगा मैं....' उसका पति बताता जा रहा था. ... और वह अपनी क़िस्मत की विद्रूपता पर दंग थी. स्त्री का सहज गुण है समझौता, सुमन ने भी वही किया. ... सोचा अपने प्रेम से, सहनशीलता से वह अपना घर सहेज लेगी. पर यहां भी एक दुष्कर सत्य मुंह बाये खड़ा था. सुमन का यह प्रथम विवाह था... उसके अरमान उड़ान पर थे... जीवन का हर सुख मुट्ठी में समेटने की इच्छा लिये वह आशा भरी स्निग्ध दृष्टि से जीवन को निहार रही थी. और सुबोध तीस वर्ष का संपूर्ण वैवाहिक जीवन जीकर निर्लिप्त-सा हो गया था. सुमन के स्नेह समर्पण में जहां सौहार्द्र ... मनुहार.... अनुराग ... समर्पण और मादकता थी वहीं सुबोध की मनोगत प्रेमिल संवेदनाएं जड़-सी हो गयी थीं. दांपत्य के अंतरंग क्षणों में जब सुमन की भावनाएं आनंद के अतिरेक में मग्न होकर संपूर्ण स्त्रीत्व की अनुभूति करना चाहतीं, सुबोध का ठंडा उष्मारहित स्पर्श जो प्रेम का नहीं, केवल कर्त्तव्य का बोध कराता था... उसे भी विरत-सा बना डालता. ऊपर से बार-बार सुबोध का यह अहसास दिलाना, कि उसने पत्नी सुख के लिए नहीं बल्कि घर व्यवस्थित करने के लिए विवाह किया है... सुमन के रहे-सहे विश्वास को भी लीलता जा रहा था. कुछ ही दिनों में वह जान गयी थी कि यह विशाल बंगला.... जिसकी साज-संभाल करते-करते वह सुबह से हलकान हो जाती है उसके सौतेले बेटे के नाम पर है. चलो कोई बात नहीं, सुबोध ने उसके बारे में भी तो ज़रूर कुछ सोचा होगा... वो मन को बहलाती रहती. धीरे-धीरे मात्र एक वर्ष में वह अच्छी तरह समझ गयी कि उसकी दशा पिंजरे में बंद पक्षी की तरह है जिसे न तो मनपसंद आहार मिलता है और न उन्मुक्त गगन में उड़ान का मौक़ा ही. प्राय: वह सोच के गहरे सागर में उतर जाती... तब उसे याद आता समीर.... उसका प्रथम प्यार... बचपन से एक साथ खेलते-झगड़ते बड़े हुए थे दोनों... समीर उसे बेइन्तहा प्यार करता था... कई बार शादी करने की ज़िद पकड़ लेता था. पर वह थी कि उसका मर्म समझने का प्रयास ही नहीं करती थी... तब आदर्श बेटी.... आदर्श बहन का लबादा ओढ़े न जाने, किस दुनियां में विचरती

रहती थी... तब जिन भाइयों की शिक्षा के लिए उसने क्या-क्या जतन नहीं किये, आज उन्हीं की अहसान फरामोशी का दंड झेलने पर वह विवश है. शादी के बाद उसे पता चला कि उसका पति उससे बीस वर्ष बड़ा है... वह भी तब, जब एक रात उसने बिफरकर कहा था, 'घर मेरे नाम नहीं.... रुपया मेरे पास नहीं. ... सब कुछ आपके बेटे का है, तो मेरा भविष्य क्या है?'

'मैं हूं न!'

'और आपके बाद?'

'तुम मेरी मृत्यु की कामना करती हो?'

'नहीं! पर ऐसा हुआ तो?'

'मुझे अपने ज़िम्मेदारियां पता हैं.' सुबोध ने कहा तो वो ग़ुस्से से तेज़ स्वर में बोली, 'मुझे अपनी संतान चाहिए... कोई तो हो जिसे मैं अपना कह सकूं.... जो मेरे सुख-दुःख का हिस्सेदार हो.'

'ऐसा नहीं हो सकता... और, लोग क्या कहेंगे? पचपन का हो चला हूं.... इस उम्र में बच्चा! ऐसा सोचना भी मत. रिटायरमेंट की उम्र है मेरी...'

'पचपन? आपने तो पैंतालीस बताया था न?' उसने हतप्रभ होकर पूछा था.

'हां! शादी-ब्याह में इतना झूठ-सच चलता ही हैं.'

'पर मैं तो पचपन की नहीं हूं न... मेरे भी कुछ अरमान हैं ... मुझे अपनी संतान चाहिए. आप इतनी एकांगी सोच क्यों रखते हैं? रिटायरमेंट की उम्र में शादी ही क्यों की?

'तुम कितने तर्क-वितर्क करती हो... एक 'वो' थी कभी तेज़ स्वर में एक शब्द नहीं कहा, जो कहता था मान लेती थी...'

'हां! उन्हें मेरे जैसी स्थिति में रहना पड़ता न तब देखते... तर्क... वितर्क...'

ऐसे विवाद अब रोज़ का क़िस्सा बन गये थे. दांपत्य में कटुता बढ़ती जा रही थी. हद तो तब हो गयी जब एक राज़ और खुला. उस दिन सुमन ने ठान लिया था वह इस रोज़-रोज़ के झगड़े को ख़त्म कर के रहेगी. उसने शांत भाव से पति से बात की, समझाने का एक अंतिम प्रयास किया. ...'आप मेरी बात, और... मुझे... समझने की एक कोशिश तो कीजिए. एक स्त्री की संपूर्णता मां बनने में ही है... एक संतान स्त्री को मातृत्व की अनमोल थाती ही नहीं देती बल्कि उसे पाकर उसका नारीत्व धन्य हो जाता है... क्या आपको नहीं लगता, हम दोनों की भी एक संतान हो?

'ऐसा नहीं हो सकता.... अब... मैं क्या बताऊं तुम्हें... देखो... मैं तुम्हें डायलेमा में नहीं रखूंगा... जब रवि पैदा हुआ था तब विभा की हालत बहुत ख़राब हो गयी थी... दूसरे बच्चे के कारण उसकी जान भी जा सकती थी... इसलिए...!'

'इसलिए?'

'मैंने... तभी... अपना... ऑपरेशन....'

'क्या?' सुमन सन्न रह गयी थी. मूक-बधिर सी बैठी रह गयी थी... अब कहने-सुनने को शेष क्या बचा था? वह पागलों की तरह चीख़-चीख़ कर पूछना चाहती थी... मेरा जीवन सूली पर क्यों चढ़ाया? पर चुप रही.... उत्तर तो उसकी आत्मा में ध्वनित हो ही रहा था... 'घर संभालने के लिए तुमसे शादी की है.' अब तुम क्या करोगी सुमन? मैं उसकी दशा पर मर्माहत थी.

'वही जो मुझे करना चाहिए दीदी.' उसकी आवाज़ में एक दृढ निश्चय झलक रहा था.

'मैं किसी क़ीमत पर घर छोड़कर मां के पास नहीं जा रही. रवि को यहां आना है तो स्वागत है, नहीं तो जहां रहना हो रहे... मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा. मैंने जीवनपर्यंत केवल दूसरों के बारे में ही सोचा है.... भाई-बहन, माता-पिता, रिश्ते-नाते निभाकर थक गयी हूं... टूट गयी हूं. अब मुझे केवल अपने लिए जीना है. वो सुमन जो वक़्त की तेज़ रफ़्तार में न जाने कहां भागती जा रही थी... आज वह स्थिर होकर केवल अपने बारे में सोचेगी... माना ज़िंदगी ने दुश्वारियों और वेदनाओं के भंवर में डालकर मेरी भावनाओं को चुनौती दी है... पर मैं भी हिम्मत नहीं हारूंगी... इस भंवर से कैसे बाहर निकलना है वह रास्ता मैंने ढूंढ़ लिया है. एक पत्नी होने के नाते मैं अपने अधिकारों के लिए ज़रूर लड़ूंगी.... और जीतूंगी भी... ये मेरा वादा है आपसे...' वो कहती जा रही थी और मैं वर्षों पहले की दृढ़ निश्चयी साहसी सुमन को सामने पाकर अभिभूत थी. वेदना का अहसास न जाने कहां खो गया था... बस एक अहसास जीवंत हो उठा था, काश! यह तेरी पत्नी होती समीर! काश! तूने उसकी प्रतीक्षा की होती! काश....!

तुम्हारी दीदी सुधा.

**उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,**
**पूर्णिया-८५४३०१ (बिहार),**
**मो. : ९४३०९२७४१८/८४०९१०२१७९**

कहानी

# ख़ानाबदोश

वंदना शुक्ल

शहर से बाहर सुनसान पहाड़ी इलाक़े की नव – निर्मित कॉलोनी में जब मैंने मकान ख़रीदने का मन बनाया तो तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं हुईं जो अपेक्षित और अधिकतर नकारात्मक ही थीं. ख़रीदने से पहले मेरे जो परिजन, मित्र मुझे उस इलाक़े के तमाम डरावने, रहस्यमयी और ढेरों असुविधाओं जनित क़िस्से सुना-सुना कर मेरे निर्णय को बदल डालने के लिए कटिबद्ध थे, वही शुभचिंतक अब मेरी अक़्ल पर तरस खाने लगे थे, भर–भर मुंह आलोचना कर रहे थे मसलन 'कहां जंगल में ले लिया है घर पूरे शहर में कोई और जगह नहीं मिली क्या?' तरह–तरह की कहानियां भी मशहूर थीं उस इलाक़े के बारे में. कुछ लोग कहते कि यहां पहले शमशान था. अब भी खोदो तो मानव खोपड़ी या हड्डियां निकलती हैं ज़मीन में से. कुछ इससे भी आगे कि यहां रात में भूत प्रेत घूमते हैं और पेड़ों पर उलटे लटके रहते हैं. गाहे बगाहे जब लाईट चली जाती या तेज़ बारिश होती तो वे बातें दिमाग में गूंजने लगतीं, मुझे भी थोड़ी दहशत होती थी और मैं खिड़की बंद कर देती. मेरे पड़ोसी अपने छोटे बच्चों को 'इन्हीं भूत प्रेतों और 'बुरी हवाओं' के डर से छत पर भी नहीं जाने देते थे. मेरे कॉलेज की सह शिक्षिकाएं तो यहां तक कह देती थीं कि 'बहुत दूर है तुम्हारा घर, हम नहीं आ सकते भाई माफ़ करना. वहां जाने में तो दिन में डर लगता है ...पता नहीं तुम कैसे रह लेती हो? अकेली रहती हो, शादी शुदा होतीं तो भी कोई बात थी.' लेकिन मैं उनके इन उलाहनों व चेतावनियों से ना तो डरी और ना ही मैंने बुरा माना. बस हंस कर टाल दिया.

यह कॉलोनी जिस ज़मीन पर बनायी गयी थी वह दरअसल उस बड़े शहर से लगे एक पुरातन गांव के खेत थे.

शहरी सुविधाओं के एवज में यानी असुविधाओं की भरपाई के लिए इन मकानों को ज़्यादा से ज़्यादा आकर्षक बनाया गया था. बिल्डर एक ऐसा चतुर प्राणी होता है जो अपने मधुर व्यवहार से ग्राहक के चेहरे को पढ़ उसके मन में अपने विश्वास का एक कोना सुनिश्चित कर लेना बख़ूबी जानता है.

यह भी एक प्राइवेट बिल्डर द्वारा बनायी गयी कॉलोनी थी जिसमें कुल मिलाकर पच्चीस घर थे जिनका डिज़ाइन वृत्ताकार था. बीच में एक पार्क और सुंदरता के लिए बनाया गया एक छोटा सा तालाब था जिसमें गहरे हरे बड़े-बड़े पत्तों के बीच कमल के गुलाबी ख़ूबसूरत फूल और कुछ और जलीय पौधे तैरते रहते थे. पार्क में भी यूं तो पिटूनियां, पॉपीज़, डेजी, लार्कस्पर, कई रंगों के गुलाब, चायना रोज, जेनिया, स्नैपड्रेगंस, मल्टी कलर्ड बोगेंविलिया आदि फूलों के सुंदर पौधे थे फिर भी मैंने अपने घर के सामने वाले हिस्से में बने बगीचे में दो छोटे पाम, क्रोटिन, मोरपंखी, सन फ़्लॉवर तथा मोगरे, गुलाब, शेवंती, रातरानी आदि जैसे कई फूलों के पेड़ व बेलें लगा रखी थीं. सुबह-सुबह खुली बड़ी खिड़कियों में से क्रॉस हवा के साथ आती उन ख़ुशबूदार फूलों की सुगंध मेरी ज़िंदगी की कुछ संतृप्तताओं में से एक थी. कॉलोनी की सीमा चौतरफ़ा अशोक और पाम के पेड़ों से घिरी हुई थी. छत पर खड़े हो दूर-दूर तक हरे-भरे खेत और पहाड़ दिखाई देते थे, बरसात में वह जगह एक जन्नत की तरह हो जाती. शाम के सिलेटी धुंधलके में दूर पहाड़ियों की अनियमित कतारों पर उतर सूरज मानो अपना सिंदूरी अंगवस्त्र उतारकर पहाड़ियों पर टांग देता और उतर जाता उनके पीछे किसी नदी में. रात में अंधेरों की काली चादर ओढ़ पहाड़ियां आपस में किस्से-बतौले करती रहतीं. धीरे-धीरे सिलेटी होते हुए वे फिर सिंदूरी दुपट्टा ओढ़ लेतीं जिन्हें सूरज अपने साथ आकाश में ले जाता और फिर चांदी सी चमकती झक्क सफ़ेद धूप. मुझे ये प्राकृतिक ख़ूबसूरती देखने के लिए छत पर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. वजह थी मेरे घर के बेड रूम की खिड़की का पीछे जंगल में खुलना जहां से दूर-दूर तक पहाड़ और घाटियां नज़र आती थीं. मेरे अग़ल-बग़ल के लोगों ने घर के पिछवाड़े सुरक्षा की

*लेखन : हंस, वागर्थ, तद्भव, कथादेश, कथाबिंब, परिकथा, कथाक्रम, नेशनल दुनियां, रसरंग (दै. भास्कर) आदि सभी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित. इसी वर्ष कहानी संग्रह 'उड़ानों के सारांश' प्रकाशित एवं उपन्यास 'राग देव गंधार' शीघ्र प्रकाशित. कहानियों का उड़िया, अंग्रज़ी, उर्दू व पंजाबी में अनुवाद.*

*पुरस्कार : 'कादंबिनी कहानी लेखन प्रतियोगिता में पुरस्कृत. 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१३' (कथाबिंब) से अलंकृत.*

*संप्रति : शिक्षिका.*

दृष्टि से ऊंची-ऊंची दीवारें खिंचवा ली थीं पर मैंने सामान्य तार की एक बाड़ी लगवा ली थी जिसके ऊपर वेदर कोट (नीला त्रिपाल) तान दिया था. नीचे का हिस्सा सीमेंटेड था. सच पूछिए तो प्रकृति के बीच रहने की क़ीमत चुकाकर मैं कोई सुविधा, सुरक्षा अथवा रीति रिवाज निभाना नहीं चाहती. ये सामाजिक मान्यताओं व धारणाओं के विरुद्ध मेरी अपने लिए छीनी गयी व्यक्तिगत आज़ादी है.

दरअसल पेड़ों से सीधे देह को भिगोती हरी–भरी नम पत्तियों की गीली हवा, भीगी मिट्टी की सोंधी ख़ुशबू और ताज़े फूलों की मदहोश कर देने वाली सुगंध मेरी देह, मन में ताज़गी भर देती है और मैं दिन भर की थकावट से निजात पा जाती हूं. कबूतर, गौरैया, तोते, लाल पूंछ वाली चिड़िया, तितलियां, कभी तीतर आदि पक्षी मेरे बग़ीचे और घर भर में टहलते रहते. बेख़ौफ़ घूमते ये परिंदे मुझे बहुत अच्छे लगते, घर भरा भरा–सा लगता. ये बेवजह डिस्टर्ब भी नहीं करते. चुपचाप घर की ख़ामोशी से गुफ़्तगू करते चहलक़दमी करते कभी पीछे हाथ बांध घर भर में घूमते. घर के किसी बड़े बुज़ुर्ग से और कभी छोटे चंचल बच्चों जैसे चहचहाते-फुदकते रहते. कोई आये और देखे कि अकेले व्यक्ति से ये सब कैसे बातें करते हैं? आदमी अकेले रहते हुए भी अकेला होता कहां है? इतना सब क्या काफ़ी नहीं मन बहलाने को?

कॉलेज से आते ही मैं सब खिड़कियां खोल देती थी. खिड़कियों–दरवाज़ों की देहरी पर मेरी प्रतीक्षा करती बैठी हवा मेरे खिड़कियां खोलते ही घर भर में घुस आती और टहलने लगती बिंदास, बे रोक-टोक?

ये मास्टर बेड रूम जो दिन या रात के कुछ घंटों में स्टडी रूम भी बन जाया करता था मेरे घर का आख़िरी कमरा था जहां से घर का पिछवाड़ा दिखायी देता था. पीछे खुलने वाली खिड़की अपेक्षाकृत बड़ी थी और उस पर हलके गुलाबी रंग का पर्दा पड़ा रहता था.

पिछले एक दो दिनों से घर के पिछवाड़े के मैदान में थोड़ी चहल पहल थी, रात में ट्रकों की आवाज़ें आतीं, फिर बजरी, गिट्टी, ईंट या लोहे के सरिये गिराने की. सुबह के संधि प्रकाश यानी जाती रात और आती सुबह के मिलन के दरम्यान ट्रकों की घुरघुराहट के क़रीब कुछ आकृतियां हिलती–डुलती दिखायी देतीं ऐसा प्रतीत होता जैसे बिना चेहरों की नीली सी पेंटिंग हो जो हिल-डुल रही हो. लेकिन जैसे–जैसे सुबह की रोशनी मैदान में छितराती जाती चेहरे स्पष्ट होते जाते. सुबह वहां कुछ लोग खड़े बातचीत करते दिखाई देते. पता चला कि पिछवाड़े के मैदान का कुछ हिस्सा एक बिल्डर ने ख़रीद लिया है और वहां भी मकान बन रहे हैं. हमारे कैंपस की सीमा के बगल में ही 'सागर होम्स' का बोर्ड भी लगा दिया गया था. वहां काम शुरू हो गया था. सुदूर पहाड़ों को मशीनों से काटा जा रहा था और उन्हीं पहाड़ों की तलहटी में काम चल रहा था. मकान बनाये जा रहे थे. तीस, चालीस मज़दूर मजदूरिनियों के जत्थे के जत्थे सुबह एक ट्रैक्टर में भर कर लाये जाते. पूरा दिन पुरुष दीवारों की ईंट गारे से चिनाई, इत्यादि अर्थात कारीगरी का काम करते और महिलाएं बेलदारी, यानी तस्सल में 'मसाला' जो एक दो पुरुष सीमेंट बजरी को मिलाकर बनाते उन्हें कारीगरों तक पहुंचातीं. नींव खुदी, बल्लियां गड़ीं, ईंटें जमीं, ईंट गारे से प्लास्टर हुआ, कच्ची सीढ़ियों का अस्थाई रास्ता बनाया गया छत तक.

ये सब इतनी जल्दी हुआ लगा जैसे ये हाथ नहीं मशीनें बना रही हैं. मैं कॉलेज जाते वक़्त देखती तब वहां समतल या एक गड्डा होता और दोपहर आकर जब खिड़की खोलकर देखती तो ज़मीन के नीचे खुदी नींव पर ईंटों की दीवार खड़ी होती. अब छतें भी पड़ने लगी थीं और छतों पर ईंट मसाला पहुंचाने का काम तीन वर्गों में होता. छत तक लकड़ी की एक नसेनी (सीढ़ी) लगा दी जाती उसके ऊपर छत पर एक आदमी खड़ा हो जाता, एक नसेनी के बीच में और एक सबसे नीचे खड़ा होता ज़मीन पर, जो बहुधा स्त्री होती. ईंटों व अन्य सामान को 'पास' करते हुए ऊपर तक पहुंचाते. मैं देखती थी उनका काम बहुत व्यवस्थित और बंटवारे के साथ होता. बंद हवा या तेज़ धूप में पसीने से लथपथ काम करते हुए भी उन मज़दूरों को खीजते या लड़ते-झगड़ते कभी नहीं देखा. बारिश के छींटे आ जाते तो वे सब सिर पर कपड़ा डाल हंसते हुए सायेदार पेड़ या अधबनी छत के नीचे खड़े हो जाते. बरसात कुछ ज़्यादा खिंच जाती तो अधेड़ पुरुष-महिलाएं जेब से बीड़ी का बंडल निकाल लेते और अधबनी छत के नीचे एक कोने में बैठ सुलगा, बातें करते रहते. वहीं एक गुट में खड़े कुछ कम उम्र के लड़के पान पराग या तंबाकू हथेलियों के बीच घिसकर मुंह में उंडेल लेते और गर्दन उचका कर बातचीत, हंसी-ठिठोली करते रहते. उनमें से कुछ युवक मोबाईल कान से चिपकाये चहलक़दमी करते हुए ऐसे बातचीत में मगन होते जैसे ना जाने कितने पुराने मित्र से कितनी रोचक बातें चल रही हों पर ध्यान पूरा वहीं आसपास आपस में चुहलबाज़ियां करती जवान मज़दूर लड़कियों पर रहता जिनमें से उनकी नयी नवेली बीबियां भी होतीं. वहीं एक साथ खड़ी युवतियां अपने भीगे बदन से गीली ओढ़नी को सिर से उघाड़ हवा में सुखाने का उपक्रम करतीं, बीच में कनखियों से कभी ख़ुद अपने सीले बदन को देखतीं और शरमाई सी एक नज़र युवकों पर भी फेर लेतीं. युवतियों के लजाये और मुस्कुराते चेहरे, उनकी निर्मल अछूती बिंदास हंसी मुझे उसी प्राकृतिक सौंदर्य का एक हिस्सा लगती निख़ालिस सौंदर्य! आकर्षण भी क्या चीज़ होती है. ....धूप, बरसात, गर्मी, सर्दी के तमाम अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं. मैं सोचती, लोग सुख पाने के लिए क्या क्या ढोंग नहीं करते और किस-किस क़ीमत पर फिर भी एक असंतोष और अतृप्ति का धुंधलापन उनके चेहरों पर पुता रहता है. सुख यह नहीं तो क्या है?

कभी-कभी हल्की-फुल्की बारिश में काम करते हुए पुरुषों के लोक गीत गाने की आवाज़ें भी आतीं और कभी पुराने फ़िल्मी गीतों की आवाज़ जिसका स्रोत आंखों को ख़ूब गड़ा गड़ाकर देखने के बाद आख़िरकार ढूंढ़ ही लिया गया. वो एक पुराना-धुराना छोटा सा ट्रांजिस्टर था जो एक नीम के पेड़ की डाल पर लटका गाया करता था और जो उन सबका मनोरंजन तो करता ही था साथ ही उनमें ताज़गी और फुर्ती भी भर देता. माहौल में मनहूसियत नहीं आ पाती. सिर पर 'इडरी' और उस पर 'मसाले' का तस्सल रखे एक हाथ से थामे उसे जगह तक निर्भाव पहुंचाते उम्रदराज़ मज़दूर मज़दूरिनों के चेहरों पर संतृप्तता की लकीर के बावजूद एक तटस्थता का भाव रहता, ना सुखी ना दुखी. पत्थरों के बीच पैदा होना, उन्हीं से मन बहला लेना, बैठना-उठना और उन्हीं को सिरहाना बना सो जाना. बस एक चक्र जीवन का सुबह के साथ घूमता हुआ रात तक....सुबह फिर वही ...वह दुःख नहीं था एक समझौता था जीवन के साथ स्थितियों के साथ और भूख के साथ. विज्ञापनों के पीछे पगलाये लोग बच्चों को दुनियां भर का शुद्ध पानी, खाना, हवा, मौसम ना जाने क्या-क्या और कैसे-कैसे उपलब्ध कराते हैं, धन ख़र्च करते हैं इन सब सुविधाओं से सुकून पाने को लेकिन इन मजदूरों के नंग धडंग बच्चे पूरे मैदान में धमा चौकड़ी मचाते, दौड़ते-भागते रहते जैसे धरती बस उनके लिए ही बनी है या यह उनके तात्कालीन आवास का वृहद आंगन है. भविष्य शब्द शायद उन जैसे लोगों के शब्द कोष में नहीं होता.

सुख एक निर्णय है ....जो सुखी होना चाहता है, अकारण सुखी होता है. उसने सदियों पूर्व यह तय कर लिया है कि अब उसे सुखी होना है क्योंकि उसके दुखों के बरअक्स यही एकमात्र विकल्प है.

गोद के बच्चे जो अगले कुछ महीनों में इन्हीं मैदानों में भागते दौड़ते दिखाई देंगे लेकिन अभी वे या तो वहीं पेड़ के नीचे बिछी किसी चादर वग़ैरह पर घुटनों चलते-फिरते या सो जाने पर उन्हें घने छायादार पेड़ की किसी शाख से झूलते कपड़े की 'गदलिया' में सुला दिया जाता. दोपहर डेढ़ बजे से दो बजे तक का समय दोपहर के भोजन का होता और वे लोग वहीं पेड़ के नीचे टिफ़िन खोल अपने-

अपने परिवारों के साथ बैठ भोजन करते. कभी-कभी स्त्रियां एक ओर, पुरुष दूसरे पेड़ के नीचे लेट घड़ी दो घड़ी आंखें भी मींच लेते. मैं देखती थी कि एक कम उम्र की दुबली पतली मज़दूरनी एक छोटे से बच्चे को बीच–बीच में स्तन पान कराने बैठ जाती. ज़्यादा देर हो जाने पर कभी-कभी ठेकेदार औरत से कुछ कहता. शायद डांटता तब उस औरत की तरह ही एक दुबला-पतला सा युवक उसके पास आकर गिड़गिड़ाता. वो उस औरत का पति होगा मैंने अंदाजा लगाया.

अब मज़दूरों के लिए ठेकेदार ने वहीं ईंटों के अस्थाई कमरे बना दिये थे जिसके बाहर ईंटों के चूल्हे बनाकर मज़दूरनियां सुबह से देगची चढ़ा देतीं. सुबह के धुंधले उजालों के साथ धुंये के छोटे-मोटे बादल उन अस्थाई कच्ची कोठरियों के आसपास उतराते हुए दिखने लगते. पहले जहां ये लोग नौ बजे तक ट्रक में भरकर आते थे अब सुबह से रौनक़ हो जाती. बच्चे भी उछलते-कूदते खाते-पीते दिखाई देते. एक छोटा सा मुहल्ला बन गया था मज़दूरों का वह अस्थाई निवास. दोपहर एक से दो बजे का वक़्त उनकी खाने की छुट्टी का होता. तब सब मज़दूर पेड़ की छांह में बैठकर खाना खाते और कुछ वहीं कपड़ा बिछा पीठ सीधी भी कर लेते. रात में उन आठ-दस कच्ची कोठरियों के आगे चूल्हे जल जाते और अक्सर लोक गीतों की आवाज़ें भी आतीं. मुझे वे गीत इतने ओरिजिनल और सोंधे लगते थे कि अब मैंने खिड़कियां बंद करना छोड़ दिया था. बस पर्दा पड़ा रहता था उन पर.

वह उतरती भादों के रविवार का दिन था. मौसम लुभावना था. मैंने बेड रूम की खिड़की का पर्दा खोल दिया था. मौसम में ना ठंडक थी ना गर्मी. सुबह मैं स्टडी टेबल पर बैठी कुछ लिख रही थी तभी मुझे पिछवाड़े से कुछ आहट हुई. मैंने मुड़कर देखा मज़दूरों के दो छोटे बच्चे कंटीले तार में से मेरी खिड़की की तरफ़ आने की कोशिश कर रहे थे. एक सात आठ-साल का लड़का भीतर आ चुका था जिसके हाथ में पेप्सी की खाली बोतल थी और वह अपने छोटे भाई को भीतर घुसाने की कोशिश कर रहा था. मेरी ओर से उसकी पीठ थी. मैंने उन्हें देखा, पहले तो मेरे मुंह से हल्की सी चीख़ निकल गयी. कांटेदार तार हैं, लग ना जाये. लेकिन जब तक मैं कुछ कहती वो कांटे के बाड़े में आ चुके थे. मैं मुस्कुराने लगी. मुझे देख वे दोनों पहले डरे, फिर मुंह में उंगली दे शर्माते हुए मुस्कुराने लगे. खिड़की से कुछ दूरी पर दोनों बच्चे खड़े हो गये और मेरी तरफ़ देखने लगे.

‘पानी’ बड़ा लड़का मेरी तरफ़ बोतल बढ़ाते हुए बोला. मैंने उसके हाथ से बोतल ले ली और पानी भर लायी.

‘क्या नाम है तुम्हारा?’ मैंने बड़े लड़के को पानी की बोतल देते हुए पूछा.

वो मेरी तरफ़ देखता रहा. कुछ नहीं कहा.

‘कुछ खाओगे?’ मैंने पूछा

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा और फिर देखने लगे मुझे.

मैंने बिस्किट का पैकेट उन्हें दिखाते हुए कहा, ‘ये खाना है तो अपना नाम बताओ जल्दी से.’

‘म्हालो नाम किछन अन एं को नाम कन्हैया छे.’ छोटे वाले ने निहायत भोलेपन से कहा और बिस्किट के पैकेट की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया. बच्चे इतने प्यारे होते हैं वह मुझे उस दिन पता चला. हालांकि ऐसा नहीं है कि मैंने एक से एक पढ़ाकू, चंचल, गोल-मटोल, होशियार, बातूनी, आंखें मटकाते, नाचते, पोईम कहते, चटर-पटर करते बच्चे देखे ना हों पर उनमें कुछ ना कुछ बनावटीपन सा रहता है जो इन मैले-कुचैले धूल धूसरित बच्चों में नदारत था. अभी वे खड़े ही थे कि वही दुबली-पतली मज़दूरनी एक बच्चे को गोद में लटकाये, लगभग भागती हुई आयी और उन्हें अपनी भाषा में डांटने लगी. मैंने उसे मना किया, ‘अरे क्यूं डांट रही हो भई उन्हें? मैंने ही रोका था’ मैंने उसे टोका.

‘घने सैतान हैं ये मेडम जी?’ वह सकुचाई सी बोली.

‘ये भी तुम्हारे ही बच्चे हैं क्या?’ मैंने हैरानी से पूछा, क्योंकि मुझे तो वही बच्ची सी लग रही थी.

उसने शरमाकर ‘हंबे’ कहकर सिर हिलाया और आंखें नीची कर लीं.

उसकी गोद में नंग-धडंग वह छोटा सा काला कलूटा बच्चा भी बंदर की तरह चिपका हुआ मिमिया रहा था जो दूर से घुटनों चलता हुआ दिखायी देता था. मज़दूरनी दोनों बड़े बच्चों को वहीं छोड़ वापस चली गयी और मैं भी उन बच्चों को वहीं कंकड़-पत्थरों, गिट्टियों से खेलता छोड़ अपने काम में व्यस्त हो गयी. थोड़ी देर बाद

मैंने झांककर देखा, वे मेरे घर के अहाते के बाहर मैदान में नीम के पेड़ पर पड़ी रस्सी पर उलटे सीधे लटक रहे हैं. अब वे बच्चे मुझसे डरते नहीं थे बल्कि मेरे कॉलेज से आने के समय पर पीछे के उस छोटे से कांटेदार तारों से ढंके अहाते में खेलते हुए खिड़की खुलने का इंतज़ार करते. जैसे ही मैं खिड़की खोलती उनके चेहरे चमक उठते. मैंने उन्हें 'नमस्ते' कहना सिखा दिया था सो खिड़की खोलते ही दोनों फट से हाथ जोड़कर खड़े हो जाते और कुछ खाने की चीज़ देने का इंतज़ार करते

☐

उस दिन जाड़ा अपने चरम पर था. मज़दूरों की बस्ती से बंद खिड़कियों की संधों में से रिसकर गानों की आवाज़ें आ रही थीं — 'अंजन की सीटी से म्हारों मन डोले'...मैंने खिड़की खोलकर देखा. उन लोगों ने वहां आग जला रखी थी. मर्द और बच्चे उस आग के इर्द-गिर्द बैठे थे. कुछ बच्चे और नौजवान गाने पर ठुमके भी लगा रहे थे और औरतें चूल्हे के पास बैठी खाना बना रही थीं. भरी सर्दी और अस्थाई रोशनी में वे खुले मैदान में जश्न मना रहे थे.

'अरे तान्या ज़रा प्लीज़ पीछे जाकर इन लोगों से कहो न कि अब ये हुड़दंग बंद करें ...ये शरीफ़ों की कॉलोनी है कोई हाट बाज़ार नहीं,' पड़ोस की मिसेज़ कपूर का फ़ोन आया था. खैर कुछ देर बाद आवाज़ें बंद हो गयीं और बस्ती फिर अंधकार में डूब गयी.

दूसरे दिन मैंने उस मजदूरनी से रात के बारे में पूछा कि क्या कोई त्यौहार था कल?

उसने कहा — 'कोंनी मेडम जी, कल जाड़ो ज़रा ज़्यास्ती थो ना सो आईयां नाचने-कूदने से टाबरां (बच्चों) ने जाड़ो कम लागे से.'

शिकवे शिकायतें सिर्फ़ हम पढ़े-लिखे और समर्थ लोगों को होती हैं, सरकार से, दुनिया से, समाज और नौकरी से, प्रकृति से ...एक लंबी फ़ेहरिस्त है.

☐

अब बच्चे मुझसे खुलने लगे थे. कभी-कभी वे एक दूसरे की शिकायत भी करते. बड़ा कन्हैया थोड़ा कम बोलता था लेकिन छोटा किसन बेहद बातूनी था, पर मुझे उसकी बातें कुछ कम समझ में आतीं. एक तो तोतला दूसरी राजस्थानी बोली ....मैं रोज़ उनके लिए खाने की कोई चीज़ कॉलेज से आते वक़्त लेकर आती जिसका वे इंतज़ार करते.

उस दिन वे दोनों रोज़ की तरह खिड़की के सीखचे पकड़े हुए मुझसे बात कर रहे थे. मैंने उनसे कहा, 'अब इस साल से तुम्हारी अम्मा से कहकर स्कूल भिजवायेंगे. पता है पढ़ना-लिखना कितना ज़रूरी होता है?'

'कित्ता?' छोटे किशन ने बिस्कुट मुंह में रखते हुए भोलेपन से कहा. मैं निरुत्तर थी फिर हड़बड़ाकर बोली, — 'अरे बहुत ज़रूरी होता है. नौकरी करते हैं, अच्छा पहनने को मिलता है, खाने को मिलता है

'मिले तो ए खान्रे को,' उसने रोटी का टुकड़ा दिखाते हुए अपने बड़े भाई की तरफ देखा जैसे मेरा मज़ाक उड़ा रहा हो. बड़े भाई कन्हैया ने उसे आंखों ही आंखों में डांटा. पर छोटे पर कोई असर नहीं दिखा वह वैसे ही खाता रहा. बहुत मुश्किल से मैंने उन्हें प्लेट में खाना सिखाया था नहीं तो वह रोटी को नीचे ज़मीन पर रखकर खा लेते थे उनसे कम से कम पांच दस मिनिट बात करना अब मेरी दिनचर्या में शामिल होने लगा था. मैंने उन्हें एक दो कविताएं भी सिखायी थीं जिन्हें वे उस नीम के छोटे पेड़ पर उन्हीं द्वारा लटकायी रस्सी के झूले पर बैठकर राजस्थानी उच्चारण में गाते रहते. अब सबसे छोटा भाई भी धीरे-धीरे चलने लगा था जिसे वे दोनों हाथ पकडकर वहां तक ले आते. कभी-कभी उनमें से एक खेल के बीच में ही उस खुले बड़े मैदान में सरपट दौड़ता हुआ जाता. कहीं भी अपनी पैंट खोलकर बैठ जाता और फिर उसे ऊपर चढ़ा फिर खेलने लगता. वे ज़्यादातर या तो नीम पर पड़े उस झूले पर झूलते या फिर मेरे पीछे बने अहाते में खेलते रहते. एक दिन मैंने उन्हें फटकारा और कहा, 'ये मेरे आराम का टाइम होता है. शोर करोगे तो खाने को कुछ नहीं मिलेगा', वे डरकर मेरी तरफ देखने लगे. फिर एक नयी समस्या आ गयी ....थोड़ी-थोड़ी देर में उनमें से एक खिड़की खटखटाते हुए कहता, 'मेडम जी आ सोर कर रयो छे ...' एक दिन मैं बुरी तरह परेशान हो गयी. थकी हुई थी. मैंने उन्हें डांटा और उन्हें कान पकड़कर उठक बैठक लगाने को कहा. यह उनकी शोर करने की सज़ा थी. शाम को मैंने देखा वे एक दूसरे से कान पकड़कर बैठक लगवा रहे थे. यह खेल बना लिया था उन्होंने.

व्यवस्थाएं ख़ुद को आख़िरकार दिनचर्या के खांचे में

बिठा ही लेती हैं. दूसरे दिन जब मैंने घर का दरवाज़ा खोल खिड़की से झांका तो उनका सबसे छोटा भाई भी वहां बैठा था. वे तीनों खिलखिलाते हुए कुछ पत्थरों से खेल रहे थे. सामने से उनकी मां चली आ रही थी. आकर उसने छोटे को गोद में उठा लिया और जाने लगी. मैंने उसे रोककर पूछा, 'इन दोनों का जन्म दिन कब आता है ?' मैं उनके जन्म दिन पर उन्हें कुछ देना चाहती थी.

'कोन्नी बेरा?' वह मुस्कुराकर बोली.

'अरे तुम्हें अपने बच्चों का जन्म दिन नहीं पता, कब हुए थे ये पैदा?' मैंने कुछ आश्चर्य से कहा.

उसके चेहरे पर कुछ अपराध बोध जैसा आ गया था. कुछ सोचकर बोली — 'या कन्हाई तो फागुन मा होयो छे अन जे कातिक मांस्यात .....' फिर शर्माती हुई मुंह पर पल्लू रखकर बोली, 'जे छोटो तो बापरो 'भट्टे' (ईंट के भट्टे) कईं ई हो गियो ऐसे ई माल ढोते....'

'अरे फिर?' मैंने घबराकर पूछा.

'कुछ कोन्नी, भाईलियां न्ने म्हारो जापो निपटा दियो छे. दो दिना पिच्छे काम करन आ गयो से.' फिर किसन की ओर देख हंसती हुई बोली, 'जा छोटू तो तब सयुं ज्यूं ई पल रयो ऐ पेड़ा के निच्चे ईंटों बत्ठो मां .... या ऐ तो घर्यों अच्छो ही कोन्नी लगे.....'

इनके लिए जीवन कितना सामान्य और सहज होता है. ना पैदा होने का उत्सव, ना मृत्यु पर हाहाकार. ...सब सहज भाव से बीत जाता है. क्या बड़े–बड़े दर्शन शास्त्रियों, चिंतकों, ब्रह्मज्ञानियों, महापुरुषों ने इन्हीं से सीखा होगा जीवन की निस्सारता का पाठ?

'अच्छा', कहकर मैं चुप हो गयी. मैंने बात आगे बढ़ाने की ज़रूरत नहीं समझी.

अगले दिन कॉलेज से आकर मैंने रोज़ की तरह खिड़की खोली तो बच्चे मुझे कहीं नहीं दिखे. सोचा अभी आ जायेंगे, पर नहीं आये. उस दिन मैं उनके लिए केले और चॉक्लेट्स लायी थी.

शाम हो गयी. आज का काम ख़त्म हो चुका था. वहां कोई नहीं था. अंधेरे घिरने लगे थे. कुछ ईंटों के चूल्हों में अंगारे सुलग रहे थे जो धुंधले अंधेरों में दिये जैसे लग रहे थे. मैं वहीं खिड़की के सीखचे पकड़े हुए खड़ी थी. बच्चे कहीं नहीं दिख रहे थे. हमेशा की तरह आज मेरी आंखों में हरे–भरे पहाड़ों, घाटियों या पहाड़ों के पीछे डूबते हुए सूरज की सिंदूरी रोशनी में चहकते हुए वापिस लौटते पक्षियों के चित्र नहीं थे बल्कि मेरी नज़रें अनजाने ही बच्चों को खोज रही थीं.

मैंने देखा एक ट्रक खड़ा है जिसमें सब मज़दूर चढ़ रहे हैं उनके हाथों में गेंती, फावड़े, कुल्हाड़ी, तस्सल जैसे सामान हैं. उन बच्चों का बाप नीम के पेड़ से गदालिया (झूला) उतार रहा था, जिसमें छोटे बच्चे को रोज़ सुलाया जाता था. उनकी मां छोटे बच्चे को छाती से चिपकाये व दूसरे हाथ में कुछ मैले-कुचैले कपड़े कथरी वग़ैरह लिए खड़ी थी. वो दोनों बच्चे किशन और कन्हैया मां का पल्लू पकड़ खेल रहे थे एक दूसरे को छूते हुए. एक बार बस मुझे देख लें वे.... मेरी उम्मीद बार-बार मुझसे कह रही थी. पर बच्चों ने अब कोई नया खेल ढूंढ़ निकाला था. मुझे वहां की गतिविधियां देखकर समझते देर ना लगी कि ये मज़दूर यहां से जा रहे हैं ...वे बच्चे भी. सभी मज़दूरों को ठेकेदार ने किसी दूसरी 'साइट' पर लगा दिया था. जवान लड़के-लड़कियों की हंसी गूंज रही थी मैदान के धुंधलके में. वे सब ट्रक में चढ़ रहे थे उसी उत्साह से जैसे यहां काम करते थे.

वही सूर्यास्त जो मुझे एक गहरे सुकून और आनंद में ले जाता था आज उस का सिंदूरी रंग ना जाने क्यों मुझे विचलित कर रहा था. ट्रक सब मज़दूरों को भर कर जा चुका था. अब वहां सन्नाटे पसरे थे... बिना बसाहट की वो नव निर्मित कोरी दीवारें किसी क़ब्रिस्तान में रखे ताबूत जैसी दिख रही थीं. ना जाने क्यों आज मुझे पहली बार दहशत हो रही थी. ..मैंने खिड़की बंद कर दी.

दूसरे दिन सोकर उठी तो एक अजीब सी बेचैनी थी. मैंने खिड़की खोल दी. सुबह हमेशा की तरह तरोताज़ा थी जिसकी रोशनी में पेड़ों की हरियाली,पहाड़ों की नीली ढलानों, रोज़ की तरह आसमान के विशाल कैनवास पर रंगों को बिखेरता उगता सूर्य, घोंसलों से उड़ते पक्षियों की कतारों और उनके ऐन नीचे ज़मीन पर मिट्टी के घड़े के टूटे हिस्से, चीथड़ों के अंश, उल्टी-सीधी चप्पल जूते, टूटे हुए चूल्हों के अवशेष, बुझी हुई राख़ और पुराने दृश्यों की कुछ कतरनें बिखरी थीं.

✍ डी-२०० विद्याविहार,
पिलानी (राज.)-३३३३१
मो. ९९२८८३१५११
shuklavandana46@gmail.com

कहानी

# हम दुखियारे जनम के

✍ मालती जोशी

'बुआ जी?' सौम्या ने धीरे से आवाज़ दी.

'क्या है बेटे?'

'मेरी छोटी बहन से मिलना चाहेंगी?'

'तुम्हारी बहन से! क्यों नहीं! वह आयी हुई है क्या?'

'नहीं. स्काईप पे'

'स्काईप पे?' मेरी समझ में कुछ नहीं आया.

'अरे वो कंप्यूटर पर फ़ोटो दिखती है न वो!' भाभी ने मुंह पर से चादर हटाते हुए कहा.

'मम्मी जी, आप चलेंगी?' सौम्या ने सहम कर पूछा. सास की नींद में खलल डालने का उसका अपराध बोध चेहरे पर झलक रहा था.

'नहीं, तुम सुनीता को ले जाओ,' कहते हुए भाभी ने फिर चादर सिर तक ओढ़ ली.

सुनीता के पीछे-पीछे चलकर मैंने बड़े संकोच के साथ उसके बेडरूम में प्रवेश किया. — 'बस, अभी ढाई बजे आयेगी.' सौम्या ने कहा.

'तुम्हारी बहन तो अमरीका में है न! वहां तो अभी रात होगी.'

'हां, पर दिन में वे लोग ऑफ़िस में होते हैं न! सुबह शाम का टाइम सूट करता है पर इत्मिनान से बात नहीं हो पाती. आज मेरा ऑफ़ था न इसलिए अभी बुलाया है. मम्मी भी आजकल वहीं है न! दिव्या की डिलीवरी के लिए गयी हुई हैं.'

ठीक ढाई बजे उसने कंप्यूटर ऑन किया. थोड़ी देर में स्क्रीन पर उसकी बहन, मां और छोटी बच्ची दिखाई दी.

'मम्मी! ये हमारी बुआजी हैं. नासिक से आयी हैं.'

उसकी मां ने नमस्ते की. मैंने भी की. फिर बहन से हाय-हलो की. बच्ची को प्यार दिया. वह इससे ज़्यादा कुछ न कर सकी. यह सब कुछ मेरे लिए इतना नया था कि खुलकर बात न कर सकी. कुछ देर बाद मैंने कहा — 'सौम्या, मैं चलती हूं. तुम लोग आराम से बात करो. कहो तो छोटू को ले जाऊं.'

'नहीं, वह भी गुड़िया से बात करेगा.'

'हो गयी बात.' कमरे में पांव देते ही भाभी ने पूछा.

'बात क्या करनी थी, बस दुआ सलाम हो गयी. कुशल क्षेम पूछ लिया बस. ज़्यादा बोलने की मुझे प्रैक्टिस थोड़े ही है. उसने इतने प्यार से बुलाया इसलिए चली गयी. पर भाभी, सौम्या की मां कितनी यंग लगती है न! लगता ही नहीं कि दो-दो बेटियां ब्याह चुकी हैं. सौम्या की शादी में देखा था वैसी की वैसी हैं.

'यंग क्यों नहीं लगेंगी. सारी ज़िम्मेदारियों से फ़ुर्सत जो हो गयी है. दोनों बेटियां ब्याह गयीं. अब आराम ही आराम है.'

'आराम कहां भाभी, ज़िम्मेदारियां कभी ख़त्म होती हैं क्या? अब बेटी की डिलीवरी के लिए उतनी दूर जाना पड़ा कि नहीं!'

'तो उनकी गांठ से क्या गया? दोनों ओर का टिकिट दामाद ने बनवाया. अब ससुर का भी बनवायेगा. वे भी दो महीने तफ़रीह कर आयेंगे.'

'बात सिर्फ़ पैसे की नहीं है. छः महीने घर से दूर रहना हंसी खेल नहीं है. वह भी पति को छोड़कर, और वहां कोई नौकर-चाकर थोड़े ही होते हैं. सब काम हाथ से करना पड़ता है.'

'बच्चे को भी संभालो और काम भी करो, मज़ाक नहीं है.'

'वहां हर काम मशीन से होता है.'

'पर मशीन चलानी तो पड़ती है.'

उत्तर में भाभी ने मुंह बिचका दिया. उसी समय सौम्या चाय के लिए पूछने आयी. उसे देखकर भाभी एकदम सकपका गयीं. उन्हें प्रकृतिस्थ करने के लिए मैंने सौम्या से कहा — 'मैं अभी भाभी से कह रही थी कि तुम्हारी मां कितनी यंग लगती हैं. लगता ही नहीं कि दो-दो बेटियां

जन्म : ४ जून १९३४, औरंगाबाद (पूर्व हैदराबाद राज्य), महाराष्ट्रीयन परिवार में.
एम. ए. हिंदी, आगरा वि. वि. (१९५६)

**प्रकाशन** : हिंदी की लगभग सभी लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां एवं लघु उपन्यास प्रकाशित. ४० से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित. उपन्यास एवं विविध कथा संग्रहों के अलावा ११ मराठी कथा संग्रह, एक गीत संग्रह भी इसमें शामिल हैं.

**अनुभव** : हिंदी की भांति मालती जी का मराठी भाषा पर भी अधिकार है और वे स्वयं अपनी कहानियों का मराठी में रूपांतरण करती हैं. उनकी कहानियों का अनुवाद कन्नड़, मलयालम, तामिल, गुजराती, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, रूसी और जापानी भाषाओं में भी हुआ है.

**अन्य** : दो दर्जन से भी अधिक नाटकों का रेडियो नाट्य रूपांतर. कई कहानियों का वाचन. दूरदर्शन पर भी कई कहानियों के नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किये. श्रीमती जया बच्चन द्वारा मालतीजी की सात कहानियों पर आधारित 'सात फेरे' धारावाहिक (सीरियल) निर्मित. गुलज़ार द्वारा निर्देशित 'किरदार' में भी मालती जी की दो कहानियों का समावेश, इसी प्रकार 'भावना' धारावाहिक में भी तीन कहानियां और 'एक कहानी' में एक कथा को शामिल किया गया. मालती जी की लिखी कुछ कहानियों का रंगमंचीय रूपांतरण कर उन्हें प्रस्तुत किया गया, जिनमें 'मां तुझे सलाम' उल्लेखनीय है.

**अलंकरण** : रचना पुरस्कार (१९८३ कलकत्ता), मराठी पुस्तक 'पाषाण' के लिए महाराष्ट्र शासन का पुरस्कार (१९८४); म. प्र. के राज्यपाल द्वारा 'अहिंदी भाषी' लेखिका के रूप में सन्मान (१९८५); म. प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'भवभूति' अलंकरण (१९९८); म. प्र. शासन का 'साहित्य शिखर सन्मान' (२०००); ओजस्विनी सम्मान, उषा मिश्रा अलंकरण, दुष्यंत कुमार साधना सम्मान (२०११), इनके अलावा अक्षर आदित्य सन्मान. कला मंदिर सन्मान, गुरुवंदना सन्मान, महिला वर्ष सन्मान इत्यादि शामिल हैं.

**विशेष** : श्रीमती मालती जोशी के साहित्य सृजन पर पुणे, कुरुक्षेत्र, कोल्हापुर, हैदराबाद, औरंगाबाद, सागर, इंदौर, भोपाल आदि विश्वविद्यालयों में एम. फ़िल. एवं पीएच. डी. के लिए शोध कार्य संपन्न.

ब्याह चुकी हैं.'

'बुआजी, आप मेरी मौसी को देखिएगा. कहने को मम्मी की बड़ी बहन हैं. पर हम लोगों की बड़ी बहन लगती हैं!

'लगेंगी क्यों नहीं? उस शरीर ने झेला ही क्या है. न बाल न बच्चा. बच्चे होते हैं तो शरीर छीजता है. बच्चे पालना कोई हंसी खेल नहीं है.'

स्वाभाविक ही था कि सौम्या को यह टिप्पणी अच्छी नहीं लगी. वह चुपचाप चाय बनाने चली गयी. भाभी का कहना ज़ारी था — 'दोनों मियां बीबी डॉक्टर हैं. ढेर सारा कमाते हैं और मस्त रहते हैं.'

'ऐसा नहीं है भाभी. निस्संतान होना अपने आप में एक बड़ा दुख है. ऐसे में कोई मस्त कैसे रह सकता है.'

'अरे ये सब पुरानी बातें हो गयीं. आजकल बच्चे होना न होना सब बराबर है. किसी के बच्चे पास नहीं रहते. सब विदेश भाग जाते हैं. देश में भी रहते हैं तो अलग गृहस्थी बसा लेते हैं. मां-बाप को कोई नहीं पूछता.'

'कम से कम तुम तो ऐसा मत कहो भाभी. तुम्हारा इकलौता होनहार बेटा देश तो क्या शहर छोड़ कर भी नहीं गया है. बीबी बच्चे के साथ तुम्हारे पास तुम्हारे घर में ही रह रहा है.'

'क्या पता कितने दिन रहेगा?' भाभी ने उसांस भर कर कहा — 'वह छुटकी जबसे ब्याहकर विदेश गयी है इन लोगों को बराबर बुला रही है. वह तो शशांक के आगे बस नहीं चलता नहीं तो सौम्या तो कब से तैयार बैठी है.

शशांक भी उसकी ज़िद को कब तक टाल पायेगा – देखते हैं.'

मैं तो परेशान हो गयी. कोई कितनी नकारात्मक सोच रख सकता है, भाभी इसकी ज़िंदा मिसाल होती जा रही हैं.

☐

दूसरे दिन दफ़्तर जाते हुए सौम्या ने किंशुक को भाभी की गोद में दे दिया. मां जब तक नज़र आती रही बच्चा खिन खिन करता रहा. बाद में चुपचाप दादी की गोद में दुबक गया.

मैंने कहा — 'भाभी, इन लोगों को अब एक आया रख लेनी चाहिए. आपकी उम्र थोड़े ही है बच्चे पालने की.'

भाभी बोलीं — 'आया रख लेगी तो सास का क्या अचार डालेगी?'

सुनकर मैं तो दंग रह गयी. मुझे सौम्या से यह आशा नहीं थी. मैं तो उसे बहुत सुलझी हुई लड़की समझती थी. पर क्या पता मनुष्य का असली स्वभाव तो साथ रहने पर ही समझ में आता है.

एक मन हुआ कि उसे अकेले में थोड़ा समझाऊं. पर दूसरे ही क्षण यह विचार त्याग दिया. चार दिन के लिए आयी हूं, क्यों बुरी बनूं.

पर शाम को जब भाई साहब दफ़्तर से लौटे और बच्चे को उनकी गोद में देकर भाभी चाय बनाने चली गयीं तो मैंने कहा — 'भाई साहब! ये दोनों इतना कमाते हैं बच्चे के लिए एक आया क्यों नहीं रखते हैं? भाभी की उम्र है क्या बच्चे पालने की?'

'तुम्हें क्या लगता है इस घर में आया कभी रखी ही नहीं गयी. कम से कम आधा दर्जन हो चुकी हैं. कभी चोरी, कभी मुंहजोरी का आरोप लगाकर सबको भगा दिया गया. बात सच हो या झूठ.... हमें तो घर के व्यक्ति का ही पक्ष लेना पड़ेगा न! बार-बार आया बदलने से बच्चा उनसे हिल नहीं पाता, दादी से चिपका रहता है. फिर उसे कुछ और काम बताये जाते हैं. कुछ तो लिहाज़ के मारे ये बेगार कर देती हैं. कुछ साफ़ मुकर जाती हैं. फिर उनकी छुट्टी.

चाय आ गयी और भाई साहब ने बात बदल दी. बोले — 'मैं पिछले वर्ष कैलाश मानसरोवर गया था ना वहां की बड़ी सुंदर तस्वीरें हैं. कमरे में आओ तुम्हें दिखाता हूं.'

भाई साहब शायद भूल गये थे कि वे तस्वीरें मुझे भेज चुके हैं. या हो सकता है इसी बहाने वे मुझे कमरे में बुलाना चाहते हों. मैंने बहस नहीं की और चुपचाप उनके पीछे चल दी. भाभी छोटू को लेकर बग़ीचे में चली गयीं.

कमरे में आते ही भाई साहब बोले — 'सुनीता, तुम आयी हो तो मैं चाहता हूं अपनी भाभी को कुछ समझाओ. बड़ा अजीब स्वभाव होता जा रहा है. अभी तुम्हें मैंने आया की बात बतायी वे घर में मिसरानी को, महरी को भी टिकने नहीं देतीं. इतनी चखचख मचाती हैं कि भाग खड़ी होती है.'

'आप कुछ कहते क्यों नहीं?'

'मैं? एक दो बार मैंने आया का पक्ष लिया तो उसने मेरे चरित्र पर ही लांक्षन लगा दिया. अब तुम्हीं बताओ इस उम्र में बेटे-बहू के सामने यह सब सुनना अच्छा लगता है. तब से मैंने बोलना ही बंद कर दिया.'

मैं चुप रही, कहती भी क्या? वे ही आगे बोले — 'तंग आकर शशांक अब रसोई के लिए एक महाराज ही ले आया है. दबंग आदमी है, अपने काम से काम रखता है. तुम्हारी भाभी मन ही मन उससे डरती हैं — ज़्यादा नहीं बोलतीं. वैसे भी शशांक ने अल्टीमेटम दे रखा है कि अब अगर इसे हटाया तो हम तीनों होटल से खाना मंगवायेंगे. आप अपनी पसंद का बनाकर खाती रहना.'

'मुझे भी लग रहा था कि भाभी थोड़ी साइकिक हो गयी हैं. शायद शशांक के विदेश जाने का डर उनके मन में बैठ गया हो!'

'वह तो अभी कहीं नहीं जा रहा. पर अगर इनका यही दस्तूर रहा तो तंग आकर एक दिन ज़रूर चला जायेगा और मैं उसे दोष भी नहीं दूंगा.'

☐

कामवाली बाइयों के बारे में भाई साहब जो कह रहे थे, उसका प्रमाण मुझे दो-तीन दिन बाद ही मिल गया. हम दोनों दोपहर में अपने-अपने बिस्तर पर लेटी बतिया रही थीं कि महरी दबदबाती हुई कमरे में दाख़िल हुई — 'अम्माजी! ये रोज़-रोज़ का तमाशा है?'

'अरी धीरे बोल! बच्चा जाग जायेगा.'

'पहले आप मेरी बात का जवाब दो. परसों साबुनदानी के नीचे दस का नोट था. आपने कहा रखकर भूल गयी थी. आज छोटू की जेब से ये पांच का नोट निकला है.'

'किसी ने दिया होगा.'

'पांच का नोट? अम्माजी हमें बेवकूफ़ समझती हो क्या? पांच का नोट आजकल हम जैसे ग़रीब–गुरबा भी लेते देते नहीं हैं. कोई आपके बच्चे को पांच रुपया देगा?'

'तू कहना क्या चाहती है?'

'यही कि इस तरह हमें परचना बंद करो. अरे, पिछले जनम में ऐसे ही काम किये होंगे जो आज आप लोगन के जूठे बरतन धो रहे हैं. इस जनम में भी वही करेंगे तो हमारी क्या गति होगी?'

अपने काम के प्रति वितृष्णा और विवशता उसके शब्दों से छलक रही थी.

'अम्माजी! आपको रखना हो तो रखो. नहीं तो मना कर दो. पर चोरी-चकारी का इल्ज़ाम लगाकर भगाओगी तो ठीक नहीं होगा हां.'

भाभी कुछ कहने को हुईं तो मैंने उन्हें चुप कर दिया और महरी से कहा — 'ठीक है बाई, जाओ अपना काम करो.' वह बड़बड़ाती हुई चली गयी. जब वह आवाज़ की जद से बाहर हो गयी तो मैंने भाभी से कहा — 'भाभी क्यों इन छोटे लोगों के मुंह लगती हो. घर की बड़ी हो, बड़ों की तरह रहो.'

भाभी ने तुरंत आंसू से पल्लू छुवाया और करवट बदल ली. फिर जैसे अपने आप से बोलीं — 'मेरी तो इस घर में कोई इज़्ज़त ही नहीं है. तभी तो नौकर-चाकर तक आंख दिखाते हैं.'

मैं तो सोच में पड़ गयी. भाभी ये सब किसे सुना रही थीं. मुझे? या कि यह बस एक जनरल स्टेटमेंट था. कुछ भी हो, मैं पूरा दिन बहुत बेचैन रही.

मुझे डर लग रहा था कि आज रात ज़रूर महाभारत होगा. कल को महरी की छुट्टी कर दी जायेगी. फिर नये सिरे से कामवाली की खोज शुरू हो जायेगी. पर वैसा कुछ नहीं हुआ. शिकायत करना तो दूर भाभी ने उस बात का ज़िक्र तक नहीं किया.

मुझे सचमुच आश्चर्य हो रहा था. मैंने सुबह भाईसाहब को यह क़िस्सा सुनाया तो बोले — 'तुम गवाह के रूप में वहां मौजूद थीं न? वो उल्टे सीधे इल्ज़ाम कैसे लगा सकती थीं. इसलिए चुप बनी रहीं.'

कुछ देर वे भी चुप रहे. फिर एकाएक बोले — 'आयडिया.'

'क्या?'

'तुम्हारे यहां होने का कुछ फ़ायदा उठा लेते हैं.'

'कैसे?'

एक आया ढूंढ़ लाते हैं. तुम्हारी देखरेख में उसकी ट्रेनिंग भी हो जायेगी और परीक्षा भी. मुझे उम्मीद है तुम भाभी और आया दोनों फ्रंट ठीक से संभाल लोगी. आया को अच्छे से ब्रीफ कर देना. बच्चे को ज़्यादा से ज़्यादा समय उसके पास छोड़ना ताकि वह हिल जाये. एक बार ठीक से सेटल हो जायेगी तो शायद थोड़े दिन चल जायेगी नहीं तो...'

'नहीं तो क्या?'

'नहीं तो मुझे अपनी अच्छी ख़ासी वकालत छोड़कर अंपायरिंग करने के लिए घर बैठना पड़ेगा.'

□

सौम्या को भी यह आयडिया बहुत पसंद आया. बोली — 'बुआजी, ऐसा हो जायेगा तो सचमुच मैं एकदम निश्चिंत हो जाऊंगी. आप नहीं जानतीं, जितनी देर बाहर रहती हूं, मन यहीं रखा रहता है. इसीलिए हमने बच्चा देर से प्लान किया था कि एक बार ठीक से सेटल हो जायें फिर सोचेंगे. पर अब लगता है ग़लती हो गयी.'

'ऐसे नहीं कहते बेटे. बच्चे के बिना गृहस्थी कोई गृहस्थी है?'

'अगले साल तो उसे प्ले स्कूल में भेजना ही है. हो सका तो डे-केयर में भी रख दूंगी पर बच्चा कम से कम दो तीन साल तो घर में रहे. पर मम्मीजी — शी इज़ बिकमिंग इंपॉसिबल.'

'दरअसल भाभी इस समय बड़ी विचित्र मन:स्थिति से गुज़र रही हैं. उन्हें लग रहा है कि गृहस्थी की बागडोर उनके हाथ से छूटी जा रही है और वे किसी तरह उसे थामे रखना चाहती हैं. किसी न किसी बहाने वे अपना अस्तित्व महसूस करवाना चाहती हैं. उन्हें यह भी डर है कि किसी दिन तुम लोग विदेश चले जाओगे. इसीलिए शायद बच्चे को अपने से अलग नहीं करना चाहतीं.'

'इसका उपाय क्या है बुआजी?'

'कुछ नहीं. उनके ईगो को सहलाते रहो बस.'

दूसरे दिन खाने की मेज़ पर सौम्या ने घोषणा की — 'कल एजेंसी से एक नयी आया आ रही है. ट्रेन्ड है. बाकी आप देख लेना. बुआजी, आप यहां हैं तब तक उसे ठीक से जांच परख लें. विश्वसनीय होनी चाहिए. क्या

होता है कि अनजान औरत को घर में छोड़कर मम्मी टॉयलेट भी नहीं जा पातीं?'

'पर मैं पूछती हूं आया की ज़रूरत ही क्या है? बच्चा तुम्हारा पल तो रहा है न! या मुझ पर विश्वास नहीं है? ये जो तुम्हारी बगल में बैठा है न! इसे भी मैंने ही बड़ा किया है — और अपने दम पर किया है. कोई नौकर आया नहीं थे मेरे पास.'

'तब की बात और थी मम्मीजी. एक तो आप हाउस वाइफ़ थीं. दूसरे आप की उम्र भी कम थी. अब इस उम्र में...'

'भाभी सौम्या ठीक कहती है. अपने बच्चे पालना सरल है क्योंकि तब हम में दम ख़म होता है? पर बच्चों के बच्चे पालने में सांस फूल जाती है.'

'सब कामों के लिए नौकर रख लो. और हमें मिट्टी के लोंदे की तरह एक कोने में पटक दो.'

'कोने में क्यों बैठेंगी आप. आप तो सुपरवाइज़ करेंगी. घर की मालकिन हैं आप. लोग बाग ठीक से काम करते हैं या नहीं यह तो आप ही को देखना है.'

'हमारी औक़ात ही क्या है?'

'ऐसा मत कहिए मम्मीजी. आप ही के भरोसे तो मैं निश्चिंत होकर काम पर जाती हूं. मैं अपनी साथवालियों को देखती हूं न. कैसी गिरती, पड़ती काम पर आती हैं. किसी का बच्चा झूला घर में है तो किसी का डे-केयर में. स्कूल से सीधे वहीं पहुंचता है. किसी के बच्चे पड़ोस से चाबी लेकर अपने से दरवाज़ा खोलते हैं — अपने से खाना खाते हैं. सबको मुझसे इतनी ईर्ष्या होती है. कहती हैं — कितनी भाग्यवान है तू. न घर की फ़िक्र है, न बच्चे की. हमें देख चौबीस घंटे भागमभाग मची रहती है. सांस लेने की फ़ुर्सत नहीं है.'

उसकी बातों से भाभी का चेहरा थोड़ा खिला खिला-सा लगा. फिर शशांक ने भी दो चार मज़ेदार बातें कीं तो वातावरण तनाव मुक्त हो गया. मैंने मन में कहा, प्रभु यह माहौल ऐसा ही बनाये रखना.

खाना खाने के बाद भाई साहब और भाभी पान खाने चले गये. मुझसे भी कहा था पर टी. वी. का बहाना करके मैं घर पर ही बनी रही. सोचा, घर में तो इन दोनों को एकांत मिलता नहीं है. बाहर निकलेंगे तो थोड़ा एक दूसरे की कह सुन लेंगे.

घूमकर लौटीं तो मेरा पान पकड़ाते हुए भाभी

फुसफुसाकर बोलीं — 'बहुरानी की बातें सुनीं?'

'तुम्हारी कितनी तारीफ कर रही थी.'

'इस लल्लो चप्पो का मतलब समझती हो न! अभी बच्चा छोटा है न. उसे एकदम नौकरों के भरोसे नहीं छोड़ा सकता. इसलिए मेरी ख़ुशामद हो रही है. मैं न रहूं तो नौकरी-चाकरी सब धरी रह जायेगी. एक दिन भी गाड़ी नहीं चल पायेगी.'

'वह बेचारी भी तो यही कह रही थी.'

'ऐसी बेचारी भी नहीं है वो.' भाभी ने तुनक कर कहा — 'जितनी ज़मीन के ऊपर है उतनी ही अंदर है समझीं?'

'अब किसी के मन में क्या है यह कौन जानता है भाभी. बोलचाल में, व्यवहार में सौम्य है, शालीन है. इसलिए मुझे तो तुम्हारी बहू बहुत प्यारी लगती है.'

'उसके मिठ बोले पन पर ही तो सब रीझते हैं.' भाभी ने कसैले स्वर में कहा — 'तुम्हारे भाई साहब को तो ऐसा पटा लिया है कि क्या बताऊं. उसके खिलाफ़ वे एक शब्द नहीं सुन सकते.'

मैं चुप हो गयी. बहस की कोई गुंजाइश ही नहीं थी. पर मन ही मन सोच में पड़ गयी थी. भाभी को यह कैसा मानसिक रोग लग गया है? दिनभर बैठे-बैठे अपने काल्पनिक दुखों को सहलाती रहती हैं. निरंतर एक शिकायती मुद्रा में जीवन के सहज और सरल सुखों को नकार रही हैं.

इस विकृति का अंत कहां होगा? कैसा होगा?

**'स्नेहबंध' ५०, दीपक सोसायटी,**
**चूना भट्टी, कोलार रोड़, भोपाल-४६२०१६**
**फ़ो. ०७५५-२४६१६३८**

## ग़ज़लें

### अशोक 'अंजुम'

(१)

बड़ी मासूमियत से सादगी से बात करता है,
मेरा किरदार जब भी ज़िंदगी से बात करता है ।

बताया है किसी ने जल्द ही ये सूख जायेगी,
तभी से मन मेरा घंटों नदी से बात करता है ।

कभी जो तीरगी मन को हमारे घेर लेती है,
तो उठ के हौसला तब रौशनी से बात करता है ।

नसीहत देर तक देती है मां उसको ज़माने की,
कोई बच्चा कभी जो अजनबी से बात करता है ।

मैं कोशिश तो बहुत करता हूं उसको जान लूं लेकिन,
वो मिलने पर बड़ी कारीगरी से बात करता है ।

शरारत देखती है शक्ल बचपन की उदासी से,
ये बचपन जब कभी संजीदगी से बात करता है ।

(२)

कौन सीरत पे ध्यान देता है,
आईना जब बयान देता है ।

मेरा किरदार इस ज़माने में,
बारहा इम्तिहान देता है ।

पंख अपनी जगह पे वाज़िब हैं,
हौसला भी उड़ान देता है ।

जितने मग़रूर आप होते हैं,
मौला उतनी ढलान देता है ।

बीती बातों को वो भुला के मुझे,
आज फिर से जुबान देता है ।

तेरे बदले में किस तरह ले लूं,
वो तो सारा ज़हान देता है ।

गली-२, चंद्र विहार कॉलोनी,
क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-२०२००२.
मो. ९२५८७७९७४४

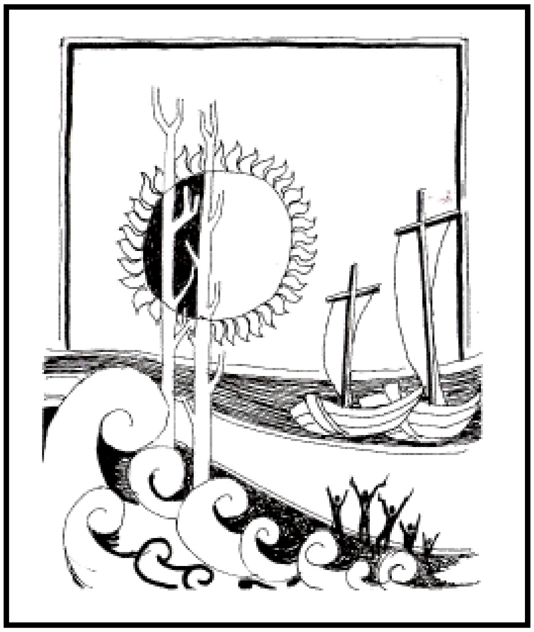

### विनय मिश्र

मन का कारोबार अलग है दौलत का बाज़ार अलग,
ये अपना संसार अलग है वो उनकी सरकार अलग ।

मीठापन होकर बहकता है एक निवेदन पानी का,
लेकिन उसको कर देता है खारेपन का ज्वार अलग ।

अपनी मिट्टी अपने सपने अपनी ख़ुशबू अपना घर,
कर लेता हूं मैं इन सबको दुनिया से थक हार अलग ।

नदियों-सी कविताएं जागीं झरनों-से-सुर ताल जगे,
आंखों देखा प्यार अलग है सपनों का है प्यार अलग ।

दिल से ही फूटे हैं दोनों लेकिन किस्मत तो देखो,
आंखों तक आते आते हैं आंसू औ' अंगार अलग ।

कैसे इन दुविधाओं की बेला में ख़ुद को समझाऊं,
बाज़ारों में शोर बहुत है घर में चीख़ पुकार अलग ।

जैसे बेहद घबरायी बातों में भी कुछ आशा हो,
वैसे ही है इन आंखों में दर्शन का संसार अलग ।

बी-१६१, हसन खां मेवाती नगर,
अलवर-३०१००१.
मो. ९४१४८१००८३.

कहानी

# बुझे रास्तों के पथिक

✍ अमर स्नेह

लगता है बीस वर्षों का तूफ़ान उसमें थम कर शांत हो गया है, आस और उम्मीदें बुझ गयी हैं, अब जैसे सब कुछ बेमानी हो गया है. वह इस शहर के पार्क के निर्जन कोने में थका हारा, निर्जीव-सा बैठ गया. बार-बार उसकी नज़र खाली-खाली आसमान में न जाने क्या ढूंढ़ने लगती. काफ़ी देर से एक मैली कुचैली औरत पीठ पर बच्चा लिये, हाथ पसारे उसके सामने खड़ी है. भान होते ही चौंककर उसने उसे ग़ौर से देखा, उसके मन ने फिर वही बातें दोहरा दीं, 'वक़्त और गुर्बत में इन्सान की शक्ल बदल जाती है कहीं ये.......' वो उस औरत से पूछ ही बैठा, 'बहन क्या नाम है तेरा..... कहीं तू रमा या नीलू तो नहीं है? वह भिखारन इस संबोधन से भावुक हो गयी. क्षण भर में उसकी आंखों में आंसू छलक पड़े. मुंह फेरकर उसने अपने मैले पल्लू से आंसू पोंछे और फिर उसे श्रद्धा भाव से देखने लगी, 'बाबू जी आपने बहन कहा तो मन भर आया........ वैसे मेरे कई नाम हैं लेकिन असली नाम तो ज़ुबेदा है.'

- समझा नहीं .....!

- मैं भी अभी तक नहीं समझ पायी........मेरी दूसरी मां ने मुझे धोखे से निकाह के बहाने कोठे पर बेच दिया था. तो वहां मेरा नाम चंपा हो गया. फिर वहां से भी मुझे बेचा गया और दूसरे कोठे पर मेरा नाम ख़ुशबू हो गया. जैसे-जैसे उम्र ढलती गयी कोठे बदलते गये और नाम भी बदलता गया. फिर जब सब कुछ ख़त्म हो गया तो कोठों ने मेरे लिए दरवाज़े बंद कर दिये और अब मुझे हर कोई भिखारन कहता है........भाई मुझे जीने से नफ़रत हो गयी है लेकिन पता नहीं यह किसका बच्चा मेरे पेट में आ गया. मैं इसकी मां हूं. इसके लिए मैं मर भी तो नहीं सकती. सोचती हूं कभी-कभी कि मेरा भाई होता तो आज..... भाई का रिश्ता बहुत पाक और सच्चा होता है...... मेरे बिकने से पहले ही वह अल्लाह को प्यारा हो गया.

'रो मत बहन..........मत रो.' उसने इधर-उधर देखकर अपने पर्स से दस-दस के नोटों की दो गड्डियां निकालीं और सील तोड़कर उसे दे दीं. बहन घबराओ नहीं इसे रख लो छिपाकर, इससे खाना खा लेना, बच्चे को दूध पिलाना..... हां किसी को बताना नहीं. एक-एक, दो-दो नोट ही निकालना वर्ना पुलिस और गुंडे तुझसे छीन लेंगे. घबराना मत, दो चार नोट निकालकर इसे सम्हालकर रख ले. .....तू यहां रोज़ आती है न.'

– हां भाई यहीं पार्क के पीछे सड़क पर पेड़ के नीचे प्लास्टिक बांधकर रहती हूं पास ही माता की मढ़ईया है.....

उसने बच्चे को प्यार किया और भिखारन के सर पर हाथ रख, वह जैसे ख़ुद को छिपाता हुआ जल्दी से निकलकर टैक्सी पकड़, लॉज में वापिस लौट आया. कमरे में दाख़िल होते ही वह फ़फ़क-फ़फ़क कर रो पड़ा, उसकी आंखों में ज़ुबेदा का चेहरा कौंधने सा लगा. मात्र बहन के संबोधन से ही ज़ुबेदा की आंखें छलक पड़ी थीं. क्या उसकी बहनों की मजबूर आंखें हमेशा अपने इस भाई को न ढूंढ़ती होंगी...! कितनी असहाय और बेबस रही है ज़ुबेदा.... कहीं उसकी बहनें भी तो..... उसकी नम आंखों में रमा और नीलू के बीस वर्ष पहले के वे चेहरे घूमने लगे. उसने अपने बैग से वो ख़त निकाला जो उसकी बहनों ने जाते हुए लिखा था. अपनी बहनों से मुलाकात का जरिया सिर्फ़ यह खत ही है. जब भी उनकी याद आती है तो वह इसे पढ़ लिया करता है. उसे ख़त के हर लब्ज़ में जैसे अपनी बहनों की आवाज़ सुनाई देती है.......

'मेरे प्यारे भाई!

नीलू मेरे साथ है फिकर न करना. भला ऐसा भी बिछुड़ना कहीं होता है, बदनसीबी और हालात वह कुछ करा देते हैं जो हम सोच भी नहीं सकते. मुझे पता है तुझ पर और मां पर क्या गुज़रेगी, तुम्हारी आंखें हर पल हमें ढूंढेंगी और हम भी तुम्हारे बिना कैसे जी पायेंगे पता नहीं. भाई इस वक़्त ज़िंदगी के पल-पल मुझे याद आ रहे हैं. पता नहीं

*लेखन* : *लगभग पैंतालिस वर्षों से देश की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख एवं व्यंग लेखन. आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए, नाटक, . फीचर और टेलीफ़िल्मों का लेखन. रंगमंच के लिए पैंतीस एकांकी एवं पूर्ण अवधि के नाटक. कुछ नाटकों एवं कहानी का कन्नड़, मराठी एवं अंग्रेजी में अनुवाद.*

*विशेष* : *लगभग पैंतीस वर्षों से रंगमंच, फ़िल्म, टेलीविजन और रेडियो पर लेखक, अभिनेता एवं निर्देशक के रूप में सक्रिय. मुंबई की प्रयोगधर्मी नाट्य संस्था थियेटर लैब के निर्देशक एवं संस्थापक. हबीब तन्वीर के साथ नया थियेटर में बरसों कार्य किया. उ. प्र. के फ़िल्म एवं नाटक विभाग, भारत सरकार के गीत एवं नाटक विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के दूरदर्शन और एशिया टेलिविजन नेटवर्क, मुंबई में वरिष्ठ निर्देशक के रुप में कार्य. विदेशों में फ़िल्म का निर्देशन सोलह देशों के कलाकारों को लेकर बनी फ़ीचर फ़िल्म 'सोमालिका दरविशका' पांच विदेशी भाषाओं में यह फ़िल्म अब तक की सबसे बड़ी उपलब्धि. फ़िल्म मेकिंग और अभिनय के शिक्षक के रूप में ख्याति.*

*संप्रति* : *रंगाश्रम पैरेलल फ़िल्मस् एवं टेलेन्ट फाउंडेशन के निर्देशक.*

फिर कभी इन्हें दोहराने का मौक़ा मिलेगा या नहीं. — पापा मिल में फोरमैन थे, हम सब एक ख़ुशहाल ज़िंदगी जी रहे थे. सभी पढ़ रहे थे लेकिन लंबी हड़ताल के चलते बदनसीबी का दौर शुरू हो गया. कोर्ट कचहरी की लड़ाई में मां के गहने बिके, फिर धीरे-धीरे घर के सामान बिकने लगे, टी. वी., फ्रिज, मोटर साइकिल यहां तक कि बर्तन बेचकर भी हमने रोटी खायी. भाई उस वक़्त भी तूने हमारी और अपनी पढ़ाई छूटने नहीं दी. हर रोज़ सुबह चार बजे अख़बार लेकर तू बांटने जाता, फिर कॉलेज जाता. देर रात तक रिक्शा चलाता. बड़ी हिम्मत थी तेरे अंदर लेकिन उस दिन शायद तू भी हार गया था जब कोर्ट का ऑर्डर लेकर पुलिस आयी और चार घंटे में फ़ैक्टरी का मकान हमें खाली करना पड़ा. हमारे साथ और भी बहुत सारे परिवार थे जिनको मकान मिले हुए थे. हमारा सामान सड़क पर था और हम सभी सामान के आस-पास बैठे थे, कुछ पता नहीं था कि हम कहां जायेंगे? उस दिन पहली बार मैंने तेरी आंखों में मजबूरी के आंसू देखे थे. तूने हिम्मत न हारी और उस दिन भी रिक्शा चलाया था क्योंकि हमारे पास न बैंक में पैसा था न हाथ में. नीलू आठवीं में थी और मेरे दसवीं के दो पर्चे बाकी थे और तेरी बी. ए. फर्स्ट ईयर की परीक्षा की तैयारी चल रही थी. सामान एक दुकान के बरामदे में रखते हुए तूने दिलासा दिलाया कि पेपर की तैयारी में लगे रहना और वहीं बरामदे में रहकर तूने परीक्षा भी दिलायी थी. कई दिनों तक कोई इंतज़ाम नहीं हो पाया था. पापा और तुम मकान ढूंढ़ते रहे लेकिन बिना एडवांस के मकान कहीं नहीं मिला. किसी ने हमारी मदद नहीं की, उस वक़्त हम कितने बेबस थे. हर गुज़रने वाला तमाशबीनों की तरह हमें देख रहा था. मां पापा से बार–बार कहती कि इन जवान-जवान लड़कियों को ऐसे खुले में लेकर कब तक रहेंगे और पापा मुंह फेरकर रोने लगते. तीसरे दिन एक ग़रीब रिक्शे वाले ने हमें अपने झोपड़े में शरण दी. काफ़ी दिनों तक वहां रहने के बाद तूने मेहनत करके अपना झोपड़ा भी बना लिया. गंदी बस्ती की गज़ालत ने हमें अपना लिया और बीमारियों की सौगात भी दे दी. पापा बीमार होते हुए भी हर रोज़ काम ढूंढ़ने जाते लेकिन निराश लौटते. एक के बाद एक हर रोज़ फ़ैक्ट्रियां बंद हो रही थीं. वे हर वक़्त यही बड़बड़ाते रहते कि सरकार और लेबर मिनिस्टरी कुछ नहीं कर रही है. अगर वो चाहे तो इन मिलों को अपने हाथ में लेकर चलाया जा सकता है लेकिन पूंजीपतियों के साथ मिलकर वे लोग कुछ नहीं कर रहे हैं. फ़ैक्ट्री मालिकों ने अंधाधुंध पैसा कमाया, मज़दूरों और कर्मचारियों का शोषण किया और आख़िर में घाटा

दिखाकर मिलें बंद कर रहे हैं. हज़ारों लाखों लोग बेरोज़गार होकर हमारी तरह सज़ा भुगत रहे हैं. सरकार अगर कोई ज़िम्मेदारी निभाती तो हमें आज ये दिन नहीं देखने पड़ते. यही कहते-कहते पापा बीमारी में एक दिन चले गये. भाई, पापा को गये एक ही दिन हुआ था कि तूने लाख मना करने पर भी रिक्शा चलाना शुरू कर दिया था. कितने मजबूर थे हम लोग. भाई, तुझे पढ़ने का कितना शौक़ था किताबें रिक्शे की सीट के नीचे रखी होती थीं और वक़्त मिलते ही तू पढ़ लेता था. तूने बी. ए. का फॉर्म भी भर दिया था. मैं भी दसवीं में पास हो गयी थी और मुझे एक एस. टी. डी. की दुकान पर काम भी मिल गया था. हालात सुधरने लगे थे. तू हमेशा कहता था कि फ़िक्र न करो नौकरी मिलते ही तुम हमारी पढ़ाई दोबारा शुरू करवा दोगे लेकिन वे सारे सपने उस दिन जल कर राख़ हो गये थे जब किसी नेता, बिल्डर ने पूरी बस्ती में आग लगवा दी थी और पूरी झोपड़पट्टी जलकर राख़ हो गयी थी. बस्ती के परिवारों को सड़क किनारे पेड़ों के नीचे पनाह लेनी पड़ी थी, हम लोगों ने भी भागकर जान बचायी थी. हमारा भी सब कुछ जलकर राख़ हो गया था. कुछ बर्तनों के साथ और तन पर जो कपड़े पहने थे उन्हीं कपड़ों में सड़क पर आ गये थे और मेरा काम भी बंद हो गया था. सभी के कपड़े चीथड़ों में तबदील हो गये थे, मां चीथड़ों से झांकते हमारे तन को देखकर रो पड़ती. हम सब की शक्ल सूरत बदल गयी थी. सड़क पर हम कभी भी चैन से सो न सके..... भाई, मुझे याद है तुम्हारे गंदे और फटे-पुराने कपड़ों की वजह से, लियाकत होते हुए भी कोई काम पर नहीं रखता था. एक बार पानवाले के पते पर तुम्हारा कोई सरकारी नौकरी के लिए इंटरव्यू लेटर आया था और तूने कैसे भी करके कबाड़ी बाज़ार से ख़रीदे कपड़े और जूते पहनकर इंटरव्यू दिया था. क़्लर्क ने कई बार ऑफ़िस में बुलाकर बताया भी था कि रिटिन टेस्ट में तेरे अच्छे नंबर हैं और इंटरव्यू भी अच्छा हुआ है लेकिन अफ़सर लोग बिना घूस लिये काम नहीं करेंगे, कुछ न कुछ अड़ंगा लगाकर किसी और को आगे कर देंगे. एपॉइंटमेंट लेटर के लिए पचास हज़ार का ख़र्चा बताया था उसने.

भाई, अगर तुझे नौकरी मिल गयी होती तो हमारे ये हालात न होते. पापा ठीक ही कहते थे इस देश में कोई सरकार नहीं है, कोई निज़ाम नहीं है..... भाई सड़क की ज़िंदगी नरक से भी बदतर है. पुलिस वाले हर रोज़ हाथ पकड़-पकड़ कर उठाते हैं, अच्छे पढ़े-लिखे लोग भी इशारों से पास बुलाते हैं, नोट दिखाते हैं. उस दिन पुलिस वाले ने तुझसे कहा था कि अगर यहां सोना है तो इन लड़कियों को थाने भेज दिया कर. उस दिन तुझ पर ख़ून सवार हो गया था, हाथापाई का नतीज़ा यह हुआ कि पुलिस तुझे चोरी के झूठे इलज़ाम में पकड़कर ले गयी, तेरी हड्डी-हड्डी उन्होंने तोड़ डाली. तुझे फंसाकर जेल भेजने की तैयारी कर ही रहे थे कि हम लोगों ने पुलिस वालों की बार-बार मिन्नतें कीं, मां ने बार-बार उनके पैर पकड़े. फिर एक पुलिस वाले ने मुझे ले जाकर तुझे छोड़ने की क़ीमत वसूल ली. भाई, हर रोज़ ही हम लोगों को लेकर तुम्हारे साथ झगड़े होते हैं, लड़ाई होती है. रात में हमें जबरदस्ती लोग गाड़ी और टैक्सी में घसीट कर ले जाते हैं तो तू होश खो बैठता है. मां चीखती–चिल्लाती बेहोश हो जाती है. तुझ अकेले को दस-दस लोग मारने लगते हैं. यही नहीं भाई जहां हम मंदिर पर पानी लेने जाते हैं, कभी-कभी नहाते भी हैं, वहां भी हमारी इज़्ज़त से सौदा होता है. मैं जब दोबारा टेलीफ़ोन पी. सी. ओ. में काम करने गयी तो ग़रीबी की वजह से वहां भी यही सब हुआ. नीलू बर्तन मांजने का जहां काम करती थी उन लोगों ने भी उस की इज़्ज़त लूटी और हारकर उसने काम छोड़ दिया. भाई तेरे शरीर पर हर रोज़ चोटें आती हैं. इतना दर्द तकलीफ़ सहकर भी तू रिक्शा चलाता है, भाई तू कह रहा था कि दस हज़ार में कहीं झोपड़े का कब्जा मिल जायेगा. लेकिन दस हज़ार रुपये हमारे पास कभी नहीं हो पायेंगे. मां सड़क पर बारिश, धूप, सर्दी में बेआरामी से मर जायेगी और तुझे भी हर रोज़ मार-मार कर लोग अपाहिज बना देंगे. भाई, आगे लिखने की हिम्मत नहीं हो रही है. भाई तूने हम दोनों बहनों के लिए दो-दो, चार-चार रुपये जोड़कर राखी में नये कपड़े लाकर दिये थे जिन्हें हम कभी नहीं पहन सके. मां कहती है कि अच्छे कपड़े न पहनना वर्ना सड़क पर लोग और परेशान करेंगे. मेरे प्यारे भाई, आज हमने वे कपड़े पहन लिये हैं. समझ लेना कि तूने अपनी बहनों को बिदाकर दिया है. हमें पता नहीं कि ये लोग हमें कहां ले जायेंगे, इन्होंने हमें दस हज़ार में ख़रीद लिया है. ये पैसे और ख़त चीथड़े में लपेट कर पेड़ के खोखले में बने घोंसले में रख दिये हैं जहां तू हमेशा पुलिस और गुंडों के डर से हर

रोज़ की कमाई छिपा देता है. हमने काम का बहाना बनाकर मां को समझा दिया है कि वो तुझे चुपके से बता देगी कि लड़कियों ने घोंसले में कुछ रखा है. देख लेना. भाई, अपना और मां का ख़्याल रखना, पता नहीं अब ज़िंदगी में कभी मुलाकात होगी या नहीं. हां, आस हमेशा रहेगी. झोपड़ा ले लेना, भूलना नहीं. मां और तुझे बहुत सा प्यार. .... तुम्हारी बदनसीब बहनें रमा और नीलू.'

आज पत्र पढ़कर फिर उसकी आंखों में ख़ून उतर आया, रोम-रोम से प्रतिशोध की चिंगारियां फूटकर लपटों में तब्दील होने लगीं. वह इस अत्याचारी, उत्पीड़क, आत्म स्वार्थी, निरंकुश व्यवस्था और विकृत, बेशर्म, हृदयहीन समाज के उन सितमग़रों और ज़िम्मेदार लोगों से चुन-चुन कर बदला लेगा, जिन्होंने मानवता को सितमदीदा, मज़लूम, ग़रीब और बेबस बनाकर ज़िल्लत और ग़ुर्बत में जीने को मजबूर किया, जिन्होंने भूख और रोटी से लड़ते लोगों को ठोकरें मार-मार कर अपनी ताकत का दंभ साधा, उनकी इज़्ज़त आबरू लूटी, उनके सपनों को नोच नोचकर अपनी हैसियत जतायी. ....लेकिन कुछ ही देर में उसके रोम-रोम से निकलती वे प्रतिशोध की लपटें पीड़ा बनकर उसके रोम-रोम से रिसने लगीं. उसे काल के गर्भ से मां की बुझी-बुझी सी आवाज़ सुनायी देने लगी.

उस दिन बहनों का यह ख़त मिलते ही वह सब कुछ भूलकर बदहवास पागल सा उन्हें ढूंढ़ने निकल गया और जब लौटा तो सड़क पर हर आते–जाते लोगों को मां अपनी अंधी होती आंखों से पहचानने का प्रयास कर मेरा नाम लेकर पुकारती नज़र आयी. कई रोज़ यह सिलसिला चला. एक दिन जब वह लौटा तो पेड़ के पास ख़ून से लथपथ मां उसे पुकार रही थी. वो किसी गाड़ी से टकरा गयी थी. जैसे ही मां को उठाकर वह अस्पताल ले जाने को हुआ तो दर्द से आहत मां ने इशारे से रोक दिया. वह बुझी-बुझी निकलते प्राणों के बीच बुदबुदा रही थी, 'अच्छा हुआ...... सोहना. ...... तू आ गया. .... रमा, नीलू नहीं आयीं... कहां चली गयीं हमें छोड़कर, उन्हें.... ढूंढ़... ' यह कहते-कहते मां के प्राणों की डोर टूट गयी.

ऐसा लगता है बेटियों ने ख़ुद को बेचकर मां के कफ़न और अर्थी का इंतज़ाम कर दिया था. मां के लिए झोपड़े का ख्वाब अब मां के साथ ही चला गया. अब इस दुनिया में सोहना अकेला हो गया. अगर कोई साथी था, तो वह था यह पेड़, जिससे लिपटकर वो कई दिनों तक रोता रहा. यहीं से पहले बहनें समाज के दिये ससुराल चली गयी थीं और मां परमधाम. फिर यहीं उसे एक रास्ता मिला जिसने उसे सोहना से सन्नू बिरादर बना दिया.

यह नया नाम उसे राजू दागी ने दिया था. राजू दागी व्यवस्था और समाज के ज़ुल्म और ज़्यादतियों से उपजा एक पढ़ा-लिखा नौजवान था. उसकी कंपनी के दो उसूल थे. उपेक्षित और सताये लोगों की लाचारी, तड़प, पीड़ा, आह, कराह, को ताकत में बदलना और उसी ताकत को हथियार बनाकर सफ़ेदपोश डाकुओं पर डाके डालना. उसकी लिस्ट में काली कमाई करने वाले बड़े-बड़े लोग और धन्ना सेठ होते. वह लूट का काउंटर, लूट ही समझता था, ऐसे लोगों को सबक सिखाने के लिए.

आज जब वह इस तड़प का एहसास कर रहा है तो यह वही स्थिति है जब वो राजू दागी से पहली बार मिला था. वो टूटते-टूटते ख़ुद को संयत करने की कोशिश कर रहा है तो उसे राजू दागी बहुत याद आने लगा...... पहले दिन रो-रोकर मैंने अपनी पूरी दास्तान राजू दागी को सुनाई तो उसने गले लगाते हुए कहा था, 'बिरादर बीती ज़िंदगी बीत गयी. उससे जो दर्द मिला, उसे मरने न देना लेकिन याद रखना तड़प पर क़ाबू रखना बहुत ज़रूरी है नहीं तो बिखर जाओगे और हिम्मत टूट जायेगी. उसे समेटकर उसी ताकत से हमें लड़ना होगा. इंतज़ार करो दिल में संजोये दर्द के किसी बेहतर तर्जुमे के लिए. मैं कुछ ही समय में सामान्य होकर महसूस करने लगा था कि मेरे अंदर कोई ताकत पैदा हो रही है. मैं हंस-बोल कर ग़मों पर पर्दा डालना भी सीख गया था. राजू दागी इतना ख़ुश मिजाज था कि हम लोग हंसते–हंसते बड़े बड़े ऑपरेशन कर जाते थे. वह कभी-कभी ख़तरनाक ऑपरेशन के दौरान अजीब-अजीब मज़ाक भी कर बैठता था. एक बार राजू दागी ने कई तरह के नकली माल बनाने वाले बड़े निर्माता को अपना निशाना बनाया. राजू दागी ने उसके सिक्योरिटी गार्ड सहित पूरे परिवार को बंधक बना लिया, लाइन बेलाइन करने (लाइन : अपनी आंतरिक और बाहरी सुरक्षा तथा हथियारों पर कब्जा और लूटे माल को सुरक्षित ले जाने के प्रबंध. बेलाइन : संचार साधनों फ़ोन, मोबाइल, सी. सी. टी. वी. को प्रभावविहीन करना और कब्ज़े में ले लेना) के बाद उसी की पत्नी से, फ़ैक्ट्री में बने नकली घी,

दूध, पनीर से खाना बनवाने लगा. इस बीच हमारा पूरे बंगले की झाड़ापोछी (क़ीमती चीज़ों की खोज एवं कब्ज़ा) का काम चलता रहा फिर उस पूरे परिवार को पिस्टल और मशीनगन के साये में जबर्दस्ती वहीं भोजन करवाया गया साथ ही उन्हीं की फ़ैक्ट्री में तैयार किये गये नकली खोए की मिठाइयां भी राजू ने उन्हें खिलवायीं. कुछ ही समय में वे सब उल्टियां करने लगे तो इसी निर्माता की फ़ैक्ट्री में बनी नकली दवाओं का भी सेवन उन्हें करवाया गया. जब उन्हें लगा कि ऐसे तो वे बच नहीं पायेंगे तो ख़ुद ही उन्होंने सेफ़ और तहख़ानों की चाबियां राजू दागी को सौंप दीं. जहां से काली कमाई के करीब पचास लाख के हीरे जवाहरात, सोना और हार्ड कैश हासिल हुआ. किसी भी ऑपरेशन से पहले वह टारगेट का भली प्रकार से अध्ययन करता, निरीक्षण करके ही ऑपरेशन को अंजाम देता था. हर लूट से वो तीस प्रतिशत अपने पास रखता और बाक़ी से कंपनी के लोगों और ग़रीब गुर्बाओं की मदद करता.

कुछ दिन पहले उसने कंपनी के लोगों को एक नये ठिकाने पर बुलाया. वह कुछ थका-थका और बेचैन लग रहा था. काफ़ी देर तक वह खामोश रहा. ऐसा लग रहा था कि वो कोई विशेष बात कहना चाहता है लेकिन समझ में नहीं आ रहा कि कैसे कहे. फिर संयत होकर बोला, '....समाज और व्यवस्था के ज़ुल्म, ज़्यादतियों और शोषण ने हमें जीवन के उस अंधेरे में धकेल दिया था. जहां से कई पीढ़ियों तक नर्क भोगते रहने के अलावा कोई चारा नहीं था. मैंने उसी नर्क में रहकर जैसे-तैसे पढ़ाई तो कर ली लेकिन भूख, बेबसी, लाचारी और क़दम-क़दम पर अपमान के चलते सर उठाकर जीने की आशाओं को सिर्फ़ नाकामी ही हाथ लगी. एक दिन मैं अपनी झोपड़ी के बाहर मायूस बैठा चींटियों की कतार को जाते हुए देख रहा था. शायद वे सब खाने की किसी चीज़ को ला रही थीं. अनायास ही मैंने एक कंकड़ से उनका रास्ता रोक दिया तो वे कंकड़ के ऊपर से अपने मार्ग की दिशा में चलती ही रहीं. बार-बार मैं उनका मार्ग अवरुद्ध करता और वे बार-बार अपने उसी मार्ग की दिशा में जाने के लिए प्रयास करतीं. मैंने जब कुछ ज़्यादा ही छेड़ छाड़ शुरू कर दी तो अचानक उन्होंने मुझ पर धावा बोल दिया. मेरे हाथ पैरों पर चिपटकर डंक मारने लगीं. मैं हाथ-पैर

झटकते हुए उन्हें हटाने लगा तो देखा कि उनकी इस लड़ाई में बहुत सी चींटियां मर गयीं. बस, वहीं से मुझे एक सबक मिला कि अगर चींटी जैसी एक छोटी सी ताकत उसे तंग करने पर जंग छेड़ सकती है तो हम तंग आये लोगों ने क्यों अपने को बेबसी और लाचारी के सुपुर्द किया हुआ है? ऐसे हालात में तिल-तिल मरने से बेहतर है, जान हथेली पर रखकर कोई ऐसी लड़ाई छेड़ें कि अपनी बेबसी और मजबूरी ही उन पर तेज़ धार हो जाये जिन्होंने हमें इस बदहाली तक पहुंचाकर, लाचार ज़िंदगी जीने को मजबूर किया हुआ है. बस मैंने अपने जैसे लाचार ग़रीबों को जोड़ा और तंग आमद ब जंग आमद की मिस्ल को अमली जामा पहना दिया. लूटने वालों को लूटा, शोषण करने वालों को सबक सिखाया और अपनी ज़िंदगी की किताब में ये इबारत दर्ज की कि ज़ुल्म, शोषण और अत्याचार करने वाले दूसरों का सुख और चैन लूटकर ख़ुशहाली की ज़िंदगी जियेंगे. यह ख्याल और यह चलन कभी भी टूट सकता है और तोड़ा जा सकता है. शायद मैं अपनी ज़िंदगी में इतना ही कर पाया

हूं, यही मेरी सार्थकता है लेकिन क़ानून की नज़र में मैं गुनहगार हूं. परंतु जब मैं देखता हूं कि समाज के वे सफ़ेदपोश देश और आम आदमी के सपनों को लूटकर सम्मानित और बादशाहों जैसी ज़िंदगी जीते हैं. तो मुझे अपनी नज़र में लगता है कि हम बेगुनाह हैं. धनवानों राजनीतिज्ञों, कुर्सीवालों की अंधी लूट को डकैती या चोरी नहीं कहा जाता. यह अमिट दाग-छाप हम पर और हमारी पीढ़ियों के लिए ही मुकर्रर है. इन पर कभी-कभी इल्ज़ाम तो लगते हैं लेकिन इनके अपराध क़ानून की अंधी गलियों में जाकर खो जाते हैं. — मेरे दोस्तों! हमने मौत के साये में ज़िंदगी ढूंढ़नी शुरू की थी लेकिन अब मैं इस ज़िंदगी की लुका-छिपी से तंग आ गया हूं और सामान्य ज़िंदगी जीना चाहता हूं लेकिन जीने का ख्वाब पूरा होगा या नहीं, नहीं जानता. इधर हालात बदल चुके हैं लगातार हमारी कोई मुखबिरी करके पुलिस से बराबर मिल रहा है.... लेकिन मैं वादा करता हूं कि किसी भी हालात में आप लोगों पर कोई आंच नहीं आयेगी. ऐसा होने से पहले मैं ख़ुद को ख़त्मकर लूंगा. दोस्तों ज़िंदगी बहुत छोटी है देखते-देखते चुक जाती है. मैं चाहता हूं कि आप सब लोग सतर्क रहकर सामान्य जीवन में लौट जाने की कोशिश करें.....

गिरोह टूट गया, राजू दागी का कोई सूराग नहीं कि वह कहां चला गया. हां जाने से पहले वह हम लोगों से अलग-अलग मिला था और बहुत सा धन उसने हम लोगों में बांट दिया.

ज़िंदगी फ़िल्म की रील की तरह उसके मन की आंखों के सामने घूमती रही और वह यादों की बैसाखी लगाये आज फिर उसी पेड़ के पास पहुंच गया है, जहां से बीस साल पहले वे सब बिछड़ गये थे. उसकी नज़र पेड़ के खोखले पर गयी. तिनकों के बीच से कुछ कागज़ झांकते नज़र आये, उसने उन्हें निकाला तो ख़ुशी से उसकी चीख़ निकल गयी. ये ख़त हैं रमा और नीलू के. न जाने उन्होंने कहां-कहां उसे ढूंढ़ा होगा और फिर निराशा में ख़त लिखकर पेड़ के हवाले कर दिये. बारिश और चिड़ियों के बैठने से ख़त के अक्षर कागज़ पर फैल सिर्फ़ स्याही भर रह गये थे. बड़ी मुश्किल से इतना भर ही पढ़ने में आ रहा है — 'भाई इस पेड़ को ....भूल...... अपना पता.... रमा.....' - शायद पूरा वाक्य यही होगा कि भाई इस पेड़ को कैसे भूल सकोगे अगर पत्र पा लो तो अपना पता यहीं लिखकर रख देना.

दूसरे लिफ़ाफ़े में केवल राखी के धागे हैं और लिफाफ़े पर नीलू का नाम अंकित है. शायद यह लिफ़ाफ़ा अभी हाल का होगा क्योंकि लिफ़ाफ़ा नया और एकदम साफ़ है.

यह जगह छोड़ने के बाद वह यहां कभी नहीं आया. राजू दागी के साथ उसने कई जगहें बदलीं और शहर भी बदलते रहे. उसे यह बात रह-रह कर कचोट रही है कि वह इस बीच यहां क्यों नहीं आया. बहनों के लिए तो उसका आख़िरी पता यही था — ये सोचते-सोचते उसने आस-पास के सारे इलाके छान मारे कि शायद उसे कहीं उसकी बहनें मिल जायें.

शाम ढल चुकी थी और वातावरण में भीषण सर्दी के कारण धुंध छाने लगी थी, चारों ओर सन्नाटा फैलने लगा तो वह लौट कर उसी पेड़ के पास आ गया. उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि वह क्या करे. उसका ठिकाना पास के एक दूसरे शहर में है जहां उसने पुलिस के डर से आना-जाना छोड़ दिया और मोबाइल भी बंद कर दिया है. काफ़ी मंथन के बाद जब उसे कोई चारा नज़र नहीं आया तो उसने वही पता और मोबाइल नंबर दोनों लिफ़ाफ़ों पर लिखकर, लिफ़ाफ़े पेड़ के उसी खोखले में रख दिये. वह पेड़ का सहारा लिये, खोया-खोया राखी के धागों को मुट्ठी में जकड़कर पकड़े हुए है तभी उसका अंतर प्रतिध्वनित होने लगा, — 'पता नहीं उसकी बहनें मिलेंगी भी या नहीं. क्या हम सब इसी तरह एक दूसरे को ढूंढ़ते रहेंगे और अगर बहनें मिल भी गयीं तो क्या वे औरों की तरह सामान्य और सम्मानित जीवन जी सकेंगी या समाज उन्हें जीने देगा. उनकी स्थिति क्या अपने इस बदनसीब भाई की तरह तो नहीं होगी?'

धुंधलका गहरा हो गया. उसने पेड़ से विदा ली. कुछ दूर चल कर अनायास ही पीछे मुड़कर वह पेड़ को देखने लगा, पर अंध धुंध के सिवा उसे कुछ दिखायी नहीं दिया. टोह टोहकर वह आगे क़दम बढ़ाने लगा और फिर ख़ुद भी अंधेरे में खो गया.

**स्नेह फ़िल्म इंस्टीट्यूट एंड रॉप फ़िल्मस् कंबाइन,**
**पो : गोहर, जिला मंडी-१७५०२९**
**मो. : ९३१८८१६४३६**

❖❖❖

आमने-सामने

# 'आधा खाली नहीं, आधा भरा गिलास कहें...!'

✍ दिलीप भाटिया

*बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास और डॉ. वासुदेव से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है दिलीप भाटिया की आत्मरचना.*

२६ दिसंबर, १९४७ को जन्मा, बाबूजी (पिता) पोस्टमास्टर थे, ५ भाई-बहनों में मैं सबसे बड़ा हूं. मेरे दादाजी झालरापाटन सिटी (जिला-झालावाड़, राज.), में एक फ़र्म में रोकड़िया थे. दादाजी की छत्रछाया मुझे १९६३ तक मिली. मेरी शिक्षा कोटा झालावाड़ क्षेत्र के अनेक स्कूलों में होती रही, क्योंकि बाबूजी का स्थानांतरण होता रहता था. लाखेरी, झालरापाटन, झालावाड़ होते हुए मैंने भवानीमंडी से कक्षा दस राजस्थान बोर्ड की मेरिट लिस्ट में १४वें रैंक से उत्तीर्ण की. प्री-यूनिवर्सिटी कक्षा ग्यारह झालावाड़ कॉलेज से उत्तीर्ण की. गीता प्रेस का 'कल्याण' घर में आता था, पर मुझे मात्र 'पढ़ो-समझो-करो' की रचनाएं ही समझ में आती थीं. बाबूजी साप्ताहिक हिंदुस्तान पढ़ते थे. गीताप्रेस की बालोपयोगी पुस्तकें आती थीं, सब मैं पढ़ता था. विशेषांक 'बालक अंक' पढ़ा. कक्षा दसवीं की परीक्षा देने के पश्चात दादाजी को रामचरितमानस अर्थ सहित सुनाता था, हिंदी दोहों वाली हरिगीता भी उसी समय पढ़ना प्रारंभ किया था. मुझे स्मरण है कि जब डॉक्टर जवाब दे गये थे, तब अंतिम सांस लेने से पहले दादाजी को मैंने गीता का पाठ कर सुनाया था. दूसरी बार पाठ करने पर पांचवें अध्याय के मध्य में उन्होंने अंतिम सांस ली थी. इस प्रकार धार्मिक एवं छुटपुट साहित्य पुस्तकें बचपन में ख़ूब पढ़ीं एवं उन्हीं पुस्तकों से मिले संस्कार, घर में अनुशासन, समय का पालन, मात्र शिक्षा पर संपूर्ण ध्यान इत्यादि के साथ जीवन भर की यात्रा के लिए एक सशक्त नींव बन गये थे.

डिप्लोमा कोटा से किया, वहां के पुस्तकालय में पत्र पत्रिकाएं भी पढ़ता था एवं प्रेमचंद, शरत, महादेवी वर्मा, निराला इत्यादि लेखकों की पुस्तकों को भी इश्यू करवा कर पढ़ता था. गोदान मानसरोवर की सारी कहानियां इत्यादि मैंने १७-१८ वर्ष की उम्र में ही पूरी पढ़ ली थीं. डिप्लोमा करने के पश्चात राजस्थान परमाणु बिजली घर में नियुक्ति हुई. हर सप्ताह कोटा आना होता था. उस समय धर्मयुग, सारिका, कहानी, नवनीत, कादंबिनी पढ़ता रहा. मालती जोशी, सूर्यबाला, कृष्णा अग्निहोत्री, अनीता राकेश (मोहन राकेश की पत्नी), ज्योत्सना मिलन, राजेंद्र राव इत्यादि को उनकी रचनाओं एवं अपनी घरेलू समस्याओं पर ख़ूब पत्र लिखता

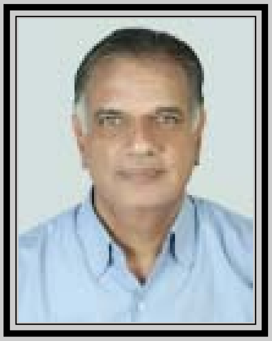

**२६ दिसंबर १९४७,**
**इंजी. डिप्लोमा , इंजी. डिग्री, एम. बी. ए., हिंदी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा.**

**प्रकाशन** : 'कड़वे सच' (लघुकथा संग्रह-२००४), 'छलकता गिलास' (पत्र-लघुकथा संकलन-2000), 'समय' (२०११), 'जीवन-मूल्य एवं प्रबंधन' (२०१२).

**अध्यवसाय** : परमाणु ऊर्जा विभाग में वैज्ञानिक ३८ वर्ष (दिसं. २००७ सेवा निवृत्त)ः ग़ैर सरकारी संस्था सहजीवन, शहडोल में - २ वर्ष कार्य.

**अन्य** : ५० से अधिक वार्ताएं आकाशवाणी के कार्यक्रम 'विज्ञान लोक' में प्रसारितः २०० शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों एवं छात्र-छात्राओं को समय प्रबंधन, परमाणु जीवन, कैरियर, पर्यावरण, सुरक्षा, गुणवत्ता, ऊर्जा, जीवन मूल्य, संस्कार इत्यादि पर गत १५ वर्षों से वार्त्ताएं, २००० लिखित संदेश वितरण एवं १००० स्वरचित पुस्तक 'समय' का वितरण.

**पुरस्कार** : ५० से अधिक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का आत्माराम पुरस्कार (२००४), तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम करों से प्राप्त.

था. सभी लेखिकाएं मुझे अनुज समझ स्नेह, प्यार, मार्गदर्शन के साथ मेरी समस्याओं का समाधान भी बतलाती थीं. सरकारी टूर पर जाने पर सूर्यबाला से मुंबई में दो बार मिला. मालती जोशी से अभी भी पत्र-व्यवहार होता है.

१० दिसंबर १९७४ को विवाह बंधन में बंधा. हिंद पॉकेट बुक्स की घरेलू लाइब्रेरी योजना का सदस्य बना, हर माह पांच पुस्तकों का पैकेट आता था. प्रतिष्ठित लेखकों की पुस्तकें मंगवाता था, इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के साथ ख़ूब पुस्तकें पढ़ीं. सत्साहित्य पढ़ता, लेखकों को प्रतिक्रिया लिखता, उनसे आशीर्वाद मिलता. वैज्ञानिक अधिकारी का कर्त्तव्य निभाना कर्म था, पर सत्साहित्य पढ़ना मेरा शौक था. ए. एम. आई. ई. (डिग्री के समकक्ष) की परीक्षाएं मात्र दो वर्ष में विवाह से पूर्व ही उत्तीर्ण कर वैज्ञानिक सहायक से वैज्ञानिक अधिकारी बन चुका था. उसी समय कुछ कविताएं भी लिखने लगा. आगरा जाना होता था, वहां मेरे मौसाजी मोहन मनोहर सिंह शांडिल्य, उप जिला मजिस्ट्रेट थे. साहित्य में रुचि रखते थे. उनकी कविताओं की एक पुस्तक 'भूले गीत' पढ़ी, मेरी कविताओं की डायरी पढ़कर उन्होंने मेरी काव्यात्मक समीक्षा में लिखा था — 'तेरी लेखनी में वो जादू है, जो सिर पर चढ़कर बोलेगा...' उन्होंने मेरी कविताओं में संशोधन भी किये एवं उत्साहवर्धन किया. मौसाजी मेरे प्रथम साहित्यिक गुरू रहे.

विभाग की प्रतियोगिताओं में भाग लेना प्रारंभ किया. निबंध में कई प्रथम पुरस्कार मिले, फिर क़लम साथी बन गयी. गृहपत्रिका अणुशक्ति में खूब लिखा, सामाजिक विषयों एवं परमाणु ऊर्जा पर १९९१ में गुजरात की संघमित्रा देसाई का कुप्रचार शीर्ष पर था. हर पत्रिका में उनके नकारात्मक लेख प्रकाशित होते थे. धर्मयुग में उनके प्रकाशित लेख पर मैंने अपने अनुभव के आधार पर सकारात्मक पत्र लिखा. वह 'धर्मयुग' के १ अगस्त १९९१ के अंक में सर्वश्रेष्ठ पत्र के रूप में 'परमाणु बिजली-अंधेरा ही नहीं, उजाला भी' प्रकाशित हुआ. परमाणु ऊर्जा विभाग, मुंबई में वह पत्र एवं उसका अंग्रेज़ी अनुवाद भेजा गया. हमारे मुख्यालय के प्रबंध निदेशक के अतिरिक्त सचिव, परमाणु ऊर्जा विभाग से मुझे प्रशंसा पत्र मिले. यह पत्र विज्ञान लेखन में मेरे लिए नींव का पत्थर सिद्ध हुआ. फिर तो विभाग की सभी गृह पत्रिकाओं के साथ वैज्ञानिक, विज्ञान, विज्ञान प्रगति, विज्ञान गंगा, विज्ञान गरिमा सिंधु, आविष्कार इत्यादि में प्रकाशित होता रहा एवं हिंदी विभागों की वैज्ञानिक संगोष्ठियों में भाग लेता रहा. आकाशवाणी चित्तौड़गढ़, कोटा, जयपुर से वार्ताएं 'विज्ञान लोक' में प्रसारित होती रहीं. हिंदी में अधिक लिखता था. आयएनएस न्यूज़, न्यूपॉवर में अंग्रेज़ी में भी लिखता रहा, सेमीनार में ख़ूब अनुसंधान पत्र-वाचन किये. 'परमाणु' पत्रिका का एक

संपूर्ण अंक ग्रंथ १९/३ मेरी ही पुस्तिका 'भारत में परमाणु ऊर्जा' पर समर्पित था. संतुष्टि मिलती थी, परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर सरल हिंदी में जनता तक तथ्यात्मक विचार पहुंचाने पर विभाग के शीर्षस्थ अधिकारी मेरे विज्ञान लेखन से बहुत प्रभावित थे. सन २००० में तारापुर परमाणु बिजली घर से प्रथम सम्मान 'विज्ञान रत्न' का मिला. विभाग का, राजभाषा क्षेत्र में सर्वप्रथम 'राजभाषा भूषण' पुरस्कार डॉ. अनिल काकोड़कर से १५ जनवरी २००३ को कैट, इंदौर में मिला, विज्ञान लेखन की निरंतरता बनी रही. १४ सितंबर २००६ को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम से केंद्रीय हिंदी संस्थान का २००४ का 'आत्माराम पुरस्कार' मिलना एक सुखद क्षण था एवं यह सिद्ध करता था कि ईमानदारी, नि:स्वार्थ भावना से सृजन पथ पर चलते रहो, फल तो स्वत: ही बिन मांगे मोती मिले के समान मिलते रहेंगे.

इसी बीच 'शुभ तारिका' पत्रिका से जुड़ा. लघुकथाएं लिखना प्रारंभ किया, लघुपत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा. प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में संपादक के नाम पत्र में प्रकाशित होता रहा. कहानी लेखन महाविद्यालय से लेख रचना का कोर्स किया. अजमेर शिविर में डॉ. महाराज कृष्ण जैन एवं उर्मि कृष्ण से मिलना हुआ. विज्ञान लेखन के सूत्र सीखे. शुभ तारिका में छ: लेखक परिशिष्ट प्रकाशित होते रहने के अतिरिक्त कई पत्रिकाओं में लघुकथाएं, कहानी, लेख प्रकाशित होते रहे. पुस्तक महल से प्रकाशित दो संकलनों में एवं अन्य कई संकलनों में मेरी लघुकथाओं को स्थान मिलता रहा. सत्साहित पढ़ने की निरंतरता भी बनाये रखी. कहानी, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान बंद होने पर लगा कि परिवार का ही कोई आत्मीय छिन गया है.

आरती प्रकाशन, खतौली से मेरा सर्वप्रथम लघुकथा संग्रह 'कड़वे सच' २००४ में प्रकाशित हुआ, उस संग्रह में मालती जोशी एवं सूर्यबाला से भी मुझे लिखित आशीर्वाद मिला था. नन्हीं भूमिका के रूप में. १४ नवंबर २००३ को धर्मपत्नी का आकस्मिक निधन मेरे लिए जीवन का तूफ़ान रहा, बाबूजी तो १६ फरवरी १९८५ को ही चले गये थे. मेरी अम्मा (मां) उनके जाने के पश्चात मेरे साथ ही रहीं. मेरी हर साहित्यिक रचना की वे पहली पाठिका होती थीं. १५ फरवरी २०१० को वे भी इस संसार से मुक्त हो गयीं. जीवन संगिनी के जाने के बाद इकलौती संतान बेटी 'मिली' की अधूरी शिक्षा पूरी करवायी, पर क़लम की स्याही नहीं सूखने दी. विज्ञान एवं साहित्य सृजन दोनों ही पक्षों पर खूब लिखता रहा, आंधी-तूफ़ानों के पश्चात भी सृजन की निरंतरता बनाये रखने से मैं तनाव, डिप्रेशन से दूर ही रहा इसीलिए चाहे लघु पत्रिकाएं ही सही हर प्रकाशित रचना मेरे मन में ऊर्जा भरती रही.

पत्रात्मक शैली में लिखना प्रारंभ किया. संतप्त बेटी को होस्टल में जो पत्र लिखा वह 'अहा! ज़िंदगी' के आशीर्वाद कॉलम के लिए भेज दिया. अक्तूबर २००५ अंक में 'आधा खाली नहीं, आधा भरा कहो' प्रकाशित हुआ, तो कई पाठक पाठिकाओं के पत्र मिले. शहडोल के सहजीवन समिति की मनीषा माथनकर का पत्र भी मिला तत्पश्चात निरंतर पत्र व्यवहार एवं शहडोल जाकर उनसे मेरा साक्षात मिलना मेरे जीवन की विलक्षण घटनाएं हैं. मनीषा दीदी से पवित्र, नि:स्वार्थ, निर्मल रिश्ते की प्रैक्टिकल परिभाषा सीखने को मिली. 'सहजीवन' शहडोल में जाने पर उनके लिए भी एक पुस्तक 'अहा! सहजीवन' लिखी, जिस पर अभी संशोधन, संपादन चल रहा है, शायद शीघ्र प्रकाशित हो सकेगी.

बोधि प्रकाशन, जयपुर से २०१० में मेरी दूसरी कृति 'छलकता गिलास' प्रकाशित हुई, जो मेरे पत्रों एवं लघुकथाओं का संग्रह है. कुछ संस्थानों से पुरस्कार, सम्मान भी मिलते रहे हैं, पर पाठक पाठिकाओं के पत्र एवं अब फ़ोन, एस. एम. एस., फेसबुक पर टिप्पणी, ई-मेल मेरे लिए अधिक मूल्यवान हैं एवं लेखन को सार्थकता का प्रमाण देते हैं. हर पत्र का मैं उत्तर देता हूं. सभी पत्र रचनाओं की कटिंग्स के समान सुरक्षित हैं. १००० से अधिक पुस्तकें हैं घरेलू व्यक्तिगत पुस्तकालय में. १५-२० पत्र पत्रिकाएं अभी भी खरीदता हूं. हर माह डाक में ४०-५० पत्र पत्रिकाएं आती हैं. डाक मिलने का दिन मेरे लिए त्यौहार सदृश है, ख़ूब पढ़ता हूं, थोड़ा लिखता हूं.

सृजन के त्रिभुज की दो भुजाओं विज्ञान एवं साहित्य के अतिरिक्त तीसरी भुजा है 'प्रबंधन', समय प्रबंधन, कैरियर प्रबंधन, जीवन प्रबंधन पर ख़ूब बोला है एवं ख़ूब लिखा है. १९९४ में पत्राचार से एम. बी. ए. करने के पश्चात प्रबंधन पर बोलना-लिखना प्रारंभ किया.

समय प्रबंधन पर २०००० पर्चे स्कूलों में बांटे. स्वयं ही प्रकाशित करवायी पुस्तक 'समय' की १००० प्रतियां निशुल्क वितरित कीं. उपकार प्रकाशन, आगरा की

'सामान्य ज्ञान दर्पण' मासिक पत्रिका के साथ अक्तूबर २०११ एवं अप्रैल २०१२ में मेरी लघु पुस्तिकाएं 'समय' एवं 'जीवन मूल्य एवं प्रबंधन' प्रकाशित होने पर देश के हर कोने से प्रतियोगी परीक्षाएं देने वाले उम्मीदवार मुझे फ़ोन करते रहते हैं. मार्गदर्शन लेते हैं, व्यक्तिगत एवं कैरियर संबंधी समस्याओं का समाधान लेते हैं. इन दोनों लघु पुस्तिकाओं ने मुझे अनजान छात्र-छात्राओं से परिचित करवा दिया. कई अनजानी बेटियां मिलना चाहती हैं. विवाह में निमंत्रित करती हैं, हर जगह जाना संभव नहीं, कन्यादान का शगुन भेज देता हूं.

३१ दिसंबर २००७ को परमाणु ऊर्जा विभाग से सेवानिवृत्त होने के पश्चात विज्ञान, साहित्य, प्रबंधन की त्रिवेणी में पढ़ लिख कर जीवन की सार्थकता महसूस करता हूं. सेवानिवृत्ति के पश्चात मिला पत्रं पुष्पं इकलौती संतान बेटी को समर्पित कर चुका हूं. बेटी एवं उसके जीवन साथी आनंद यादव के घर में अतिथि रूप में निवास कर रहा हूं. जीवन की संध्या में मिली एवं आनंद की सेवा के बदले मेरे पास देने के लिए कोई मेवा नहीं है. पेंशन मिलने पर पत्रं पुष्पं आर्थिक अंशदान आनंद को दे देता हूं. मिली चित्रकला में शोध कर रही है, उसके शोध हेतु भी आर्थिक सहयोग कर संतोष अनुभव करता हूं.

जीवन में ५८ बार रक्तदान एवं गत १० वर्षों से आय का २ से ५ प्रतिशत निर्धन छात्राओं की सहायता हेतु स्टेशनरी, ड्रेस, फ़ीस, पंखे इत्यादि के रूप में देता रहा हूं. स्कूलों में आमंत्रित वार्ताएं देता रहता हूं. नगर के 'गायत्री परिवार' की साप्ताहिक बाल पाठशाला में गत एक वर्ष से चरित्र, संस्कार, समय प्रबंधन, शिक्षा पर बच्चों से बात करता हूं. परमाणु नगरी के ७५ प्रतिशत बच्चों के बीच मेरी पहचान 'दिलीप अंकल' है.

बड़ों के आशीर्वाद में विश्वास है, बच्चों से मिल रहा प्यार ऊर्जा स्त्रोत है. उर्मि कृष्ण, मालती जोशी, मनीषा माथनकर इत्यादि आत्मीयों से आशीर्वाद मिलता रहता है. 'कथाबिंब' के संपादक अरविंद जी के समक्ष मैं नतमस्तक हूं, उनके लिए शब्दकोश के औपचारिक शब्द धन्यवाद कृतज्ञता आभार लिखना उनकी महानता का अवमूल्यन होगा.

जीवन के सूर्यास्त से पूर्व स्वास्थ्य, शक्ति, हिम्मत, ऊर्जा, संसाधन अनुसार सृजन के तीनों स्तंभों — विज्ञान, साहित्य एवं प्रबंधन पर अधिक पढ़ूंगा, कम लिखूंगा, अधिक सुनूंगा, कम बोलूंगा. इस आत्मरचना के पाठक-पाठिका मेरी ई-पुस्तक 'त्रिवेणी' हेतु नि:संकोच संपर्क कर सकते हैं, एक पत्र/फ़ोन/ई-मेल/एस. एम. एस. से मुझे अपना आशीर्वाद प्यार, स्नेह, मार्गदर्शन देंगे, तो मेरा भविष्य का सृजन शायद कुछ अधिक गुणवत्तापूर्ण हो सकेगा एवं मैं देश के कुछ और परायों को अपना ही नहीं, आत्मीय बना सकूंगा.

३७२/२०१, न्यू मार्केट,
रावतभाटा-३२३३०७.
मो. ९४६१५९१४९८

गीत

## आये दिन प्यार के

**रजनी मोरवाल**

*आये दिन प्यार के,*
*उम्र गयी बचपन की,*
*यौवन ले अंगड़ाई,*
*जरदोज़ी, गोटे की*
*चूनर भी लहरायी.*
*प्रियतम की गलियों में,*
*अंखियों दो-चार के.*

*अधरों पे प्रीति जगी,*
*काजल की कोर सजी,*
*अंगिया के फुंदने पर,*
*लजवंती डोर सजी.*
*जूड़े में गजरे हैं,*
*जूही, कचनार के.*

*सखियों की बातों में,*
*रेशम-सी भटकन है.*
*सपनीली आंखों में,*
*साजन की चितवन है.*
*अंगों की वीणा में,*
*स्पंदन के तार के.*

सी-२०४, संगाथ प्लेटीना,
साबरमती-गांधीनगर हाईवे,
मोटेरा, अहमदाबाद-३८०००५
मो. : ९८२४१६०६१२

सागर/सीपी

# 'साहित्य-सर्जन एक साधना है'

✍ डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ

*(डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ से अशोक वशिष्ठ की 'कथाबिंब' के लिए विशेष बातचीत.)*

**● हिंदी साहित्य और लेखन में आपकी सक्रियता का आरंभ कब और कैसे हुआ?**

मथुरा के किशोरी रमण कॉलेज में अध्ययन के दौरान काव्य गोष्ठियों में श्रोता के रूप में शामिल होता था तो लगता था कि हम भी कुछ लिख सकते हैं. कुछ मुक्तक लिखे और सुनाये तो हौसला बढ़ने लगा. बीस वर्ष की आयु में संभवतया १९६७-१९६८ में कॉलेज की पत्रिका में 'एक मनुष्य दो रूप' शीर्षक से मेरी कहानी प्रकाशित हुई. प्रोत्साहन मिला, सराहना मिली तो बड़ा अच्छा लगा. इसके बाद एम. ए. (हिंदी) करते समय वहां के एक प्रकाशक मित्र द्वारा दी गयी पुस्तकें पढ़ने को मिलती रहीं. उन दिनों उपन्यासकार जैनेंद्र की पुस्तक 'जैनेंद्र और उनका त्यागपत्र' एम. ए. के पाठ्यक्रम में थी. इस पुस्तक की समीक्षा लिखी. लोगों ने सराहा. नया जोश आ गया. फिर वर्ष १९७८ में ४०० पृष्ठ की 'साहित्यिक निबंध' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी. सदर बाज़ार, मथुरा स्थित प्रकाशक 'जवाहर पुस्तकालय' को काफ़ी भड़काया गया कि इतने नये लड़के की लिखी पुस्तक छापोगे तो डूब जाओगे लेकिन कुंज बिहारी जी अपने फ़ैसले पर क़ायम रहे और लेखक के रूप में वेद प्रकाश शर्मा 'अमिताभ' के नाम से पुस्तक प्रकाशित हुई और सफल रही. 'जवाहर पुस्तकालय' आज तक मेरे प्रकाशक बने हुए हैं. उसके बाद चस्का लग गया और निरंतरता कायम हो गयी.

**● क्या साहित्यकार को किसी वाद से जुड़े रहना आवश्यक है?**

देखिए, मार्क्सवाद, साम्यवाद, संघ परिवार ये सब राजनैतिक विचारधाराएं हैं. मेरा अपना मानना है कि लेखक की अपनी विचारधारा तो अवश्य होनी चाहिए. प्रेमचंद के अनुसार, 'ये सब तो राजनैतिक संगठन हैं. इनसे बंधकर आप अच्छे साहित्यकार नहीं बन सकते.'

**● आपकी विचारधारा क्या है?**

समाज जैसा है उससे और अच्छे समाज का निर्माण हो. अज्ञान-अंधकार-प्रतिवाद की चेतना समाज में उत्पन्न हो. ऐसा मेरा प्रयास रहता है और यह काम बिना किसी वाद का ठप्पा लगे भी हो सकता है सो मैं वही कर रहा हूं.

**● क्या कारण है कि बृज अंचल से आज साहित्यकार उभरकर नहीं आ पा रहे?**

एक ज़माना था जब बृज अंचल के साहित्यकारों और कवियों की चर्चा हुआ करती थी. विशंभरजी, शिवराज चौहान, सोम ठाकुर, कविवर नीरज जी मंचों के बादशाह हुआ करते थे. नीरज जी आज भी उच्च शिखर पर विराजमान हैं. लेकिन यह क्रम आगे नहीं चल पाया. हो सकता है इसका कारण महत्वाकांक्षा की कमी रही हो. यह भी संभव है कि नवोदित लेखक और कवियों को उचित मंच नहीं मिल पा रहा हो.

**● दिल्ली के बड़े प्रकाशकों के यहां छपना बड़ा कठिन है. यह आम धारणा है. आपका क्या कहना है?**

दिल्ली न केवल देश की राजधानी है बल्कि साहित्य और प्रकाशन की भी राजधानी बन गयी है. देशभर के लेखक दिल्ली भाग रहे हैं. वहां वे अपने संपर्क बनाते हैं. दिल्ली में साहित्य, पुरस्कार और प्रकाशन का एक माफ़िया बन गया है. इस माफ़िया ने चारों तरफ अपनी पकड़ बनायी हुई है. इसीलिए बाहर का अच्छे से अच्छा लेखक वहां तक अपनी पहुंच नहीं बना पाता और छपना मुश्किल

***१ जुलाई १९४७, एम. ए., पीएच. डी., डी. लिट्***

**प्रकाशन** : 'दूसरी शहादत', 'दुख के पुल से' (कहानी संग्रह), 'बसंत के इंतज़ार में, 'कितनी अग्नि परीक्षाएं' (कविता-संग्रह).

**अन्य** : इनके अतिरिक्त एक व्यंग्य-संकलन, एक लघुकथा-संग्रह 'गुलामी', डेढ़ दर्जन आलोचनात्मक शोध परक कृतियां प्रकाशित, लगभग चार दशकों तक अध्यापन के उपरांत सेवा निवृत्ति.

**संप्रति** : त्रैमासिक 'अभिनव प्रसंगवश' का प्रकाशन-संपादन.

**डी-१३१, रमेश विहार, अलीगढ़-२०२००१.**
**मो. : ९८३७००४३१३**

हो जाता है. मैं अगर कितना ही अच्छा काम कर रहा हूं लेकिन यदि मेरे 'टॉप' के लोगों से संबंध अच्छे नहीं हैं या मेरी पहचान नहीं है तो मुझे कैसे वहां स्थान मिलेगा और कैसे कोई पुरस्कार मिल पायेगा?

**● आप पिछले चार दशकों से भी अधिक समय से अलीगढ़ में निवास कर रहे हैं. यहां की साहित्यिक गतिविधियों के बारे में बताइए.**

यहां अधिकांश साहित्यिक गतिविधियां 'जनवादी लेखक संघ' के बैनर के तत्वावधान में होती हैं. ज़्यादातर मध्यमार्गीय लोग जुड़ते हैं लेकिन निरंतरता नहीं आ पा रही है.

**● यहां कविता-मंच की क्या स्थिति है?**

देखिए! अब वह ज़माना तो रहा नहीं जब नीरज जी, देवराज दिनेश, शिशुपाल सिंह, बलवीर सिंह 'रंग', सोम ठाकुर और काका हाथरसी मंच की शोभा बढ़ाते थे. इन सबको देखने और सुनने गुणी श्रोता आते थे. बड़ा अच्छा लगता था. अब तो पिछले बीस वर्षों से हास्य-व्यंग्य के नाम पर फूहड़ता परोसी जा रही है. सिगरेट, शराब और सस्तापन इन तीन चीज़ों ने मंच का सत्यानाश कर दिया है. यही मंच जन चेतना और समाज जागरण-प्रसारण का मंच बन सकता था लेकिन वह फूहड़ मनोरंजन का स्थान बन कर रह गया है. आज यदि काव्य-मंच का मूल्यांकन अर्थशास्त्र का कोई विद्यार्थी करे तो पायेगा कि कवि सम्मेलन का आयोजन आज अच्छा-ख़ासा उद्योग है जहां करोड़ों की पूंजी लगी है. डेढ़-दो लाख का एक सामान्य कवि सम्मेलन होता है. अधिकांश कवि अपनी नियमित नौकरी छोड़कर फुल टाइम कवि बन गये हैं. लाखों का वारा-न्यारा हो रहा है. आयोजक धनाढ्यों को क्या पड़ी है समाज की चेतना जगाने की? फूहड़ता परोसकर पैसा बटोरा जा रहा है.

**● कहा जाता रहा है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' क्या आज भी यह कथन सत्य है?**

मेरा मानना है कि वर्तमान में साहित्य समाज से प्रभावित नहीं हो रहा है. आज समाज बिखर रहा है. समाज है ही कहां? घरों में कोई पत्रिका नहीं आती. सारिका, धर्मयुग जैसी पत्रिकाएं अब कहां हैं? पढ़ा-लिखा, मध्य वर्गीय समाज आज दृश्य-मीडिया से अपना मन बहला रहा है. दृश्य-मीडिया का प्रभाव नकारात्मक है. पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने का चलन ख़त्म हो गया है. पहले पुस्तकालय हुआ करते थे, घरों में ग्रंथ हुआ करते थे, कवि सम्मेलन हुआ करते थे. अब कहां हैं ये सब?

**● समाज से साहित्य ग़ायब हो रहा है. इससे किस तरह का नुक़सान होगा?**

साहित्य संवेदनशीलता का वाहक है. साहित्य के अभाव में संवेदनशीलता ग़ायब हो रही है. समाज का अमानवीयकरण हो रहा है. मनुष्यता छीज रही है. ललित कलाएं ग़ायब हो रही हैं. समाज में साहित्य का कोई हस्तक्षेप नहीं है तो समाज का नुक़सान तो होना ही है. बड़ा कष्ट होता है यह सब देखकर !

**● आप किन साहित्यकारों से प्रभावित रहे?**

मेरे साहित्यिक गुरू रहे विवेकीराम जी. उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रभाव मुझ पर रहा. इनके अलावा रामदरश मिश्र, मलखान सिंह सिसोदिया, ललित

शुक्ल, दिनेश पालीवाल, सूर्यबाला, कृष्णा अग्निहोत्री, चित्रा मुदगल आदि को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता हूं.

**● आप पिछले सत्तरह वर्षों से 'अभिनव-प्रसंगवश' का संपादन कर रहे हैं. इसके बारे में बताइए.**

'अभिनव प्रसंगवश' जनधर्मी सर्जना और चिंतन का त्रैमासिक आयोजन है. इसमें लेखकों के संस्मरण, कहानी, लघुकथाएं, व्यंग्य, आलेख, गीत, कविताएं आदि छपते हैं. मेरी ऐसी कभी इच्छा नहीं रही कि मैं कहीं नहीं छप रहा हूं तो अपनी निजी पत्रिका प्रकाशित करूं. इस पत्रिका में संपादकीय के अलावा मेरी कोई रचना नहीं होती. 'अभिनव प्रसंगवश' की ख़ासियत है 'सर्जना' और उसे लेकर विचार विमर्श. जिन नवोदित लेखकों को मंच नहीं मिल पाता उनको इसमें स्थान दिया जाता है. अब तो यह एक जुनून बन चुका है.

**● नवोदित लेखकों को आप क्या सलाह देना चाहेंगे?**

नवोदित लेखकों को मेरी राय सबसे पहले तो यही होगी कि अपने लेखन पर विश्वास करें. उसमें दम होगा तो अवश्य छपेगा. दूसरी बात यह कि बैसाखी पर चल कर आप साहित्य जगत में मंजिल नहीं पा सकते. धरती बहुत बड़ी है. समय भी है तो कभी तो पहचाने जायेंगे ही. साहित्य का सफ़र अकेले ही तय किया जाता है. आपकी सर्जना में दम हो तो आगे आइए. साहित्य-सर्जन एक साधना है. निराश होने से साधना पूरी नहीं होती.

**● भविष्य में आपकी क्या योजना है?**

मुझे आलोचना संबंधी बहुत सा कार्य करना है. कबीर पर लिखे गये हिंदी नाटकों के ऊपर एक मोनोग्राफ़ तैयार करना चाह रहा हूं. हिंदी कथा आलोचना पर आलोचनात्मक कृति करना चाहता हूं.

हिंदी कथा आलोचना का विकास कैसे हुआ इसके क्या प्रतिमान हैं? इस पर कार्य कर रहा हूं. इसके अलावा मेरे बहुत से गीत और ग़जलें बिखरी हुई हैं उनको मैं एक जगह लाना चाहता हूं.

**अशोक वशिष्ठ**
**सी-६०३, सागर रेसीडेंसी**
**सेक्टर-२७, नेरुल (पूर्व),**
**नयी मुंबई-४००७०६**
**मो. : ९८६९३३७६१८**

# दो ग़ज़लें

**शरीफ़ कुरेशी**

(१)

ज़माने की तरह अपना चलन बदला नहीं करते,
अंधेरों से उजाले कोई समझौता नहीं करते ।
तुम अच्छे हो अगर थोड़े से ग़ैरतमंद भी होते,
भरे बाज़ार में ईमान को बेचा नहीं करते ।
हज़ारों ऐसी चीज़ें हैं ख़रीदी बेची जाती हैं,
सभी का सौदा करते हैं मगर अपना नहीं करते ।
दरख़्तों की अगर पूछो तो इंसानों से बेहतर है,
हवा में नफ़रतों का ज़हर तो घोला नहीं करते ।
ज़मीं का ज़लज़ला भारी चट्टानें तोड़ देता है,
मकां कच्चा ही अच्छा हम उसे पुख़्तः नहीं करते ।
मज़ः जब है कि दुनिया में रहे दर्वेश की सूरत,
जो दुनिया से अलग जीते हैं वो अच्छा नहीं करते ।
'शरीफ़' अल्लाह का फ़ज़्लों करम है हम फ़क़ीरों पर
ज़मीं की बादशाहत हम कभी मांगा नहीं करते ।

(२)

कोई साथी न आश्ना मेरा,
कुछ अलग सा है रास्ता मेरा ।
मैं चला दोस्तों ख़ुदा हाफ़िज,
इम्तिहां ख़त्म हो चुका मेरा ।
याद रखना नयी नयी बातें,
भूल जाना कहा सुना मेरा ।
उसके दर से मुहाल था उठना,
मैं उठा पांव सो गया मेरा ।
अपनी बेचेहरगी पे रोता हूं,
उसका चेहरा था आइना मेरा ।
मेरी आंखों में कैसे नींद आये,
जागता है अभी ख़ुदा मेरा ।
सोचता हूं फ़िज़ूल है कितना,
अपने बारे में सोचना मेरा ।
सब यहीं का यहीं रहेगा 'शरीफ़',
क्या तुम्हारा है और क्या मेरा ।

१/९१, भूसामंडी,
फतेहगढ़ (उ. प्र.)-२०९६०१.
मो. ९०४४६७४७०१

लघुकथाएं

## दौड़

✍ डॉ. रामनिवास 'मानव'

मैं काफ़ी देर से उसकी गतिविधियों को देख रहा हूं. वह हर आते-जाते वाहन को रुकने का संकेत करता है. लेकिन रुकना तो दूर, कोई उसकी ओर देखता तक नहीं. उसके हाव-भाव से स्पष्ट है कि वह देश के किसी दूर-दराज़ इलाक़े से आया कोई अनपढ़ ग्रामीण है, जो संभवतः पहली बार मुंबई जैसे महानगर में आया है और इसके तौर-तरीक़ों से बिल्कुल अपरिचित है.

मुझे लगता है, वह कोई व्यक्ति नहीं, देश का अति पिछड़ा गांव है, जो तेज़ रफ़्तार से दौड़ते महानगर से जैसे कह रहा है – 'प्रगति की इस दौड़ में कुछ दूर तक मुझे भी साथ ले चलो महानगर!' लेकिन कुछ देर के लिए ठिठक कर उसके संकेतों को देखे, उसकी भावनाओं को समझे, इसकी फ़ुर्सत कहां है, महानगर के पास!

फ़िलहाल मेरा चिंतन, उस ग्रामीण का संकेत और महानगर की दौड़ जारी है.

✉ ७०६, सेक्टर-१३,
हिसार(हरि.)-१२५००५
फो.:०१६६२-२३८७२०

## 'खिलौना'

✍ महावीर चौहान

इन चार दिनों में कई फ़ोन आ चुके हैं, शहर से 'आप खेतीबाड़ी का काम निबटा कर जल्दी चले आओ, जबसे आप यहां से गये हैं, तबसे दीपू की तबियत ख़राब चल रही है. यह न कुछ खाता है और न कुछ पीता है. हरदम गुमसुम रहता है, इसके चेहरे से हंसी, ग़ायब हो गयी है, इसके कई डॉक्टरी टेस्ट भी करा लिये हैं. सारे टेस्ट 'पॉजेटिव' आये हैं.

मैं सारे महत्वपूर्ण कार्य स्थगित कर शहर चला आया. दीपू अपने स्कूल समय के बाद मुझसे ख़ूब हंसता, बतियाता है. उसके चेहरे की हंसी वापस लौट आयी है, वह हरदम ख़ुश रहता है. मेरे साथ गेंद बल्ला खेलता है. कभी दादाजी का घोड़ा बनाकर बाज़ार जाने का अभिनय करता है.

मैं चालीस वर्षों तक बच्चों के बीच रहा हूं. मेरी प्रकृति भी बच्चों जैसी हो गयी है.

वह मुझे अपना खिलौना समझता है. मैं उसका खिलौना हूं या वह मेरा खिलौना है! इस बात का निर्णय नहीं कर पा रहा हूं.

✉ ग्रा. जमालपुर किरत, पो. राजा का ताज़पुर,
बिजनौर (उ. प्र.)-२४६७३५
मो. ९०१२७००३८९

---

## बंदर का न्याय

✍ डॉ. किशोर काबरा

मेरे ड्राइंगरूम में तीन बंदरों वाला एक खिलौना रखा है. मैं जब उसे देखता हूं तो पहला बंदर कहता है, 'बुरा मत देखो.'

मैं जब उसकी सुनता हूं तो दूसरा बंदर कहता है – 'बुरा मत सुनो.'

मैं जब कुछ बोलने को होता हूं तो तीसरा बंदर कहता है, – 'बुरा मत बोलो.'

मैं समझ नहीं पाता हूं कि इन तीन सत्यों को बताने के लिए तीन बंदरों की क्या ज़रूरत थी? क्या यह काम एक बंदर नहीं कर सकता था.

उसी समय बीच वाला बंदर बोला – 'मैं कर सकता हूं.'

मैंने पूछा, 'भला कैसे?'

उसने कहा – 'सुनो! आंखों पर हाथ रखने की ज़रूरत नहीं, वे तो पलकों से वैसे ही बंद हो जाती हैं. मुंह पर हाथ रखने की भी ज़रूरत नहीं, वह तो ओठों से स्वयं ही बंद हो जाता है. हां, कानों पर कोई दरवाज़ा नहीं है. अगर तुम मुझे कहो तो मैं आंखें और मुंह बंद कर लूं और कानों पर हाथ रखकर तीनों बंदरों की जगह ले लूं?'

और वह बंदर अगल-बगल के दोनों बंदरों को भगाकर और आंख-मुंह और कान बंद करके बैठ गया. ६५ वर्षों से वह उसी स्थान पर बैठा हुआ है.

✉ ५६२, जनता नगर, चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४. मो. ९७२६३८७९६७.

बाइस्कोप

# विलक्षण प्रतिभा के धनी : अज़ीम मलिक

✍ सविता बजाज

*(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं. अगले अंकों में पढ़िए जलीस शरवानी व मज़ाहिर रहीम आदि के बारे में.)*

आप शायर हैं, गीतकार हैं, लेखक और निर्देशक हैं. इनकी शायरी में इक्कीसवीं सदी की धड़कनें सुनाई देती हैं. इनका अदबी सफ़र, उर्दू ज़ुबान, शायरी, कच्ची ज़मीन पर लगाया हुआ पौधा है. तजुर्बों की भट्टी में तप कर बिखरे हुए इंसान हैं अज़ीम मलिक. इनकी कला चाहे वह किसी सीरियल या फ़िल्म के संवाद हों या कोई गीत संगीत — ज़िंदगी की तल्ख़ सच्चाइयों को उजागर करती है. ज़िंदगी में हर इंसा के साथ दिलचस्प और हैरत अंगेज़ वाक्यात पेश आते हैं, इनकी ज़िंदगी में भी हर क़दम पर अक्स और नुकूश दिखे.

मैं बरसों से कला जगत से जुड़ी हुई हूं. जहां भी गयी मलिक साहब मौजूद, चाहे वह एक्टिंग हो, डबिंग या स्टेज़ ड्रामा. कभी उर्दू ज़ुबान में मदद करते, कभी डबिंग के गुर सिखाते या फिर अभिनय की बारीकियां समझाते. हरफ़न मौला हैं, आप. दिल्ली गयी तो सोचा वहां मंडी हाउस में कोई नाटक देख लेती हूं. आप स्टेज़ पर कोई पात्र निभाते दिखे और ड्रामे का निर्देशन भी आपका था.

शो ख़त्म हुआ, मैं बैक स्टेज़ जाकर मिली तो बोले — 'आपने बताया होता तो बंबई से इकट्ठे आ जाते. हां, मैंने कहलवा भेजा था, 'कहना मैंने याद किया.' मैं हंस दी. बोली — 'शायद यह आपका तकिया कलाम है. मुझसे शेरो शायरी नहीं चलेगी. बताइए कब मिलेंगे?' बोले — 'अंधेरी डबिंग स्टूडियो में.'

बंबई में बहुत मुश्किल से हाथ आये अज़ीम साहब. बातों का सिलसिला कुछ यूं चल निकला.

**आपने अपने समय के लगभग सभी कालजयी हिंदी नाटकों का बेमिसाल और अपूर्व मंचन किया. भाषा का प्रशिक्षण भी दिया. रंगशिल्प, रंगभूमि या रंगकर्म के हिंदुस्तान भर में संचरण में मदद की. पचासों फ़िल्मों के संवाद लिखे, गीत लिखे, ग़ज़लें लिखीं, फ़िल्मों का निर्देशन किया. कुछ फ़िल्मों को बहुत पसंद किया गया. कुछ सीरियल लिखे, निर्देशन भी किया जो बहुत हिट रहे. यहां तक के सफ़र की शुरुआत कैसे हुई?**

बहुत लंबी कहानी है, बोले — 'मैं एक अमीर ज़मीदार के यहां फ़ैजाबाद (उ. प्र.) के अंबेडकर नगर में पैदा हुआ जहां घर में हाथी भी थे, यानी कि हाथी-नशीन परिवार. हाथी सिंबल था अमीरी का जो १९४८ में ख़त्म हो गया. पिता जी औरतों की पंचायत के सरपंच थे. मुझे गांव की नौटंकी देखने का बहुत शौक़ था. लेकिन वहां औरतों का बहुत दख़ल था, गाने बजाने वाली औरतों का जो कभी-कभी फ़िल्मों में हीरोइनें भी बनती थीं. स्कूल से ही अभिनय और लेखन शुरू हो गया. 'मदर इंडिया' फ़िल्म को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया और मैंने बिरजू का पात्र किया, गाने भी गाये. नरगिस वाला पात्र एक लड़के ने किया. मुझे बहुत ईनाम मिले. यहीं से लेखन चला जो आजतक चल रहा है.'

**आपको तो उर्दू में महारथ हासिल है. लेकिन आपको तो यह ज़बान नहीं आती थी, कैसे सीखी?**

सविता जी, हमारे घर में लिखना पढ़ना तो दूर, उर्दू बोलने का माहौल भी नहीं था. ख़ालिस अवधी बोली जाती थी गांव भर में और आज भी वही हाल है. बस सफ़ी बी.

***१२ अप्रैल १९४७;***
***बी. ए. (उर्दू - लखनऊ वि. वि.), इंजी. (४ वर्ष कोर्स), टी.वी. तकनीशियन (३वर्ष कोर्स), एरोनॉटिक्ल इंजी. सर्टिफिकेट, एक्टिंग में डिप्लोमा व स्टेज मैनेजमेंट,***

**फ़िल्में :** फ़ितरत, जय मां विंध्यवासिनी, वह मिली थी, पर्वत के उस पार.

**टी.वी.सीरियल :** चौवन्नी, उनका बचपन, ऐसे भी नहीं लोग, आसपास, लौट के बुद्धू घर को आये आदि.

फ़िल्मों में आने से पहले आपने डिफेन्स की ऑर्डीनेन्स फ़ैक्ट्री और हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लि. में रक्षा उत्पादन विभागों में कार्य किया. अनेक फ़िल्मों और सीरियलों में सहयोगी के रूप में भी काम किया. कविताओं और ग़ज़लों की कई पुस्तकें प्रकाशित.

***बी- ४०३/४०४ सरस्वती, एवरशाइन एन्क्लेव, मीरारोड (पू), ठाणे-४०११०७.***
***मो. ९८१९७८८६३७***

ए. के जासूसी उपन्यास पढ़-पढ़ कर उर्दू पढ़नी सीखी और अपने बचपन के दोस्त शमीम अहमद से उर्दू में ख़त लिखना सीखा. बाद में मैंने बी. ए. उर्दू में किया.

**बंबई का सफ़र कैसे शुरू किया.?**

'बंबई मैं १९७६ में अच्छी ख़ासी नौकरी छोड़ चला आया था.'

**उन्हीं दिनों आप मुझे एक डबिंग थियेटर में मिले जहां आप ऐडीटिंग कर रहे थे और मैं डबिंग.**

'जी, डबिंग में मैं हेल्प कर रहा था. जो भी काम मिलता गया, करता गया. सीखता गया. जुनून था लिखने का. सलिल चौधरी के भाई समीर के साथ चौदह महीने रहा. उनके साथ मिलकर फ़िल्मों के सवांद लिखे. निर्देशन भी किया और धीरे–धीरे काम बनने लगा.'

'चुभन' फ़िल्म के सवांद, स्क्रीन प्ले सब किया लेकिन फ़िल्म पूरी नहीं बनी. उन दिनों बहुत-सी समस्याएं थीं. फ़िल्में अधूरी ही रह जाती थीं. मेरी गाड़ी तो चल निकली थी, ऑल राउंडर था इसलिए कभी कोई दिक्कत नहीं हुई.'

**शायद पैंतीस साल हो गये आपको कला की सेवा करते, बहुत भाग लिये, सब जगह पांव पसारे, कुछ हासिल हुआ?**

'सब कुछ मिला. हां, एक बात समझ आ गयी. अंत नहीं किसी चीज़ का. धीरे-धीरे आगे बढ़ो, मेरी तरह भागो नहीं. समझदारी से हासिल करो. यह क्षेत्र अथाह है. हां, जोश कम नहीं हुआ. न ही लगन. सब बढ़िया है.'

**आजकल आपके लिखे टाइटल सांग्स की भरमार है, सीरियलों में.**

'सच है, बहुत लिख रहा हूं. जो मिले कबूल कर लो. बने रहना है न यहां फ़िल्म इंडस्ट्री में. मन ही नहीं भरता काम कर करके. रोज़ी-रोटी का साधन भी तो है न मेरा काम.'

**ख़ुद आपने एक फ़िल्म लिखी थी 'फ़ितरत' जो ख़ूब चली. नामी कलाकार थे फ़िल्म में. निर्देशन भी किया. दोबारा ऐसी फ़िल्म कब बनायेंगे?**

अब तो बस एक ही तमन्ना है अपना ख़ुद का प्रोडक्शन हाउस खोलूं और अच्छी-अच्छी फ़िल्में बनाऊं. जिसमें आज के इंसानों के सरोकार हों. मेरा लिखा एक शेर है.' —

*मैं ख़ुदा का हक़ीर बंदा हूं,*
*लोग मुझको अज़ीम कहते हैं.*
*समझ मत जंग तूने जीत ली है,*
*ज़िंदगी मुझसे, तुझे वक़्फ़ा दिया है.*
*मैं अभी हारा नहीं.*

यह मेरा शेर अमरीका में हर शायर की ज़बान पर है.

***पो. बॉक्स-१९७४३,***
***जयराज नगर, बोरिवली (प.),***
***फ़ोन : ९२२३२०६३५६***

# अधिकार सचेतन आधुनिक स्त्री की कथा

✍ डॉ. सुमित्रा अग्रवाल

**ये दिन ... वे दिन...**(क. सं.) : **उषा भटनागर**
**प्रकाशक** : मेधा बुक्स, एक्स-११, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. **मूल्य- ३००/-**

'ये दिन....वे दिन' उषा भटनागर का नवीनतम कहानी संग्रह है. उनकी अधिकतर कहानियों की पृष्ठभूमि में एक स्त्री है जिसकी आंखों में एक अनाम-सी उदासी है तो होठों पर एक हल्की-सी हंसी भी.

उनकी कहानियों के केंद्र में अलग-अलग उम्र की, अलग-अलग परिवेश की, अलग-अलग व्यक्तित्व की – ठेठ देहातिन से लेकर 'लिव इन' और 'सरोगेट मदरशिप' को अपनाने वाली स्त्री है. पर एक बात उनमें समान रूप से पायी गयी है और वह है उनका जीवन के राजमार्ग के किनारे खड़े होकर भी अपना आपा संभालने वाला अद्‌भुत साहस. और यही साहस उनकी कहानियों में विभिन्न रंग की छटाओं में फूटा पड़ रहा है.

विस्थापन का दर्द तो सभी को झेलना पड़ता है. स्त्री को औरों से ज़्यादा. चावल के पौधे की तरह कच्ची उम्र में झेले गये विस्थापन की कसक से उबरते-उबरते जीवन के अगले पड़ाव पर एक और विस्थापन उसके सामने आ खड़ा होता है जहां न वह किसी से कुछ कह पाती है न किसी से अपना दर्द बांट पाती है. अपने घर में नयी बयार के आने के उत्साह और प्रसन्नता के खुमार में डूबी-डूबी ही अचानक एक दिन वह देखती है कि तिनका-तिनका जोड़कर जो घोंसला उसने बड़े अरमानों से बनाया था उसका द्वार छेंककर कोई अपना ही खड़ा है. अब शिकायत क्या करे? किससे करे? विस्थापन की यही टीस 'कांसे का थाल' की सुमिता झेलती है.

यह ठीक है कि जीवन में एक ऐसा टर्निंग पॉइंट भी आता ही है जब जीवन के राजमार्ग पर सधे क़दमों से चलता व्यक्ति अचानक अपने आप को हाशिये पर पाता है. लेकिन 'अपनी ज़मीन' की अश्विनी जैसे लोग उस हाशिये में भी अपनी ज़मीन तलाश ही लेते हैं. वहीं ज़िंदगी की शुरुआत का दो प्राणी का घर पहले छह का बनकर पुनः जब सिमटकर फिर वही दो का दो हो गया तब अश्विनी का विचलित मन कहीं भी नहीं टिका, और जिस सोनू की पुकार 'दादी', 'दादी' अपने सूने घर के कोनों में उभरती हुई वह सुनती थी वही सोनू बहू सीमा का हाथ थामे उसके क्रेच में सामने आ खड़ी होती है. जिस सास पर बच्चों को घर में छोड़ना सीमा को स्वीकार नहीं था उसी सास के क्रेच में अपने बच्चों को छोड़ने वह आती है, अश्विनी को अपनी ज़मीन तो मिल गयी पर छत उससे दूर हो गयी.

अश्विनी अपनी सूझबूझ से अपनी ज़मीन पा लेती है पर कच्छ के सूदूर गांव में रहनेवाली बेसहारा वृद्ध रामदेई अपना घर, अपनी ज़मीन हासिल करती है. केवल अपनी गहन जिजीविषा के बल पर, 'हम ज़िंदा हैं' कहानी उसी स्वाभिमानी रामदेई की है जिसे उसके बेटा-बहू कुंभ के मेले में छोड़कर चले गये थे. ऐसे हज़ारों लोग उस मेले में भटक रहे थे जिन्हें उनके अपने ही छलकर वहां छोड़ गये थे. अपनी बेबसी पर रामदेई की आंखें और दिल दोनों भर आये. अपनी सहज बुद्धि के द्वारा उसने सारी स्थिति को समझ लिया और समाजसेवी संस्थाओं की मदद द्वारा वह अपने गांव लौट आयी – अपने ही टिकट पर, भूकंप से ज़मीदोंज हुए गांव में मलबे का ढेर बने अपने घर के सामने खड़े होकर वह सर्वेक्षण-अधिकारी से कहती है - 'ना बाबूजी, ना! यह घर मेरे नाम है. बड़ी मेहनत से हमने इसे बनाया था. भैया! हम रामदेई हैं. आपको पुराने काग़ज़ मिल जायें. तो हमारे भतार का नाम उसमें लिखा मिल जायेगा. वे हमारे नाम इस घर को कर गये थे.....हम कुंभ के मेले में छूट गयी थीं. अब जाकर घर लगे हैं. घर हमारे मर्द ने बनाया था.

हमारे नाम मरते वक़्त कर गये थे. सो घर का मुआवजा हमें ही मिलेगा. आप जान लो यह सच कि हम अभी ज़िंदा हैं.'

'ये दिन...वे दिन...' जीवन के बदलते रंगों की कहानी है. वे दिन कैसे थे कि जब पति-पत्नी की मुलाकात रात के गहराते अंधियारे में होती थी. दो-तीन बच्चे होने के बाद वे एक-दूसरे को देखते थे और ये दिन...ये दिन कैसे हैं? सौम्या के शब्दों में – अब ममी यहां आये हैं सपनों के देश में, कुछ बनने, नाम कमाने, धन कमाने, सो वक़्त कहां है इन सबके लिए. पर वहां देश में खाली बैठी औरतों को एक ही तो काम है, साल दर साल बच्चा पैदा करने का, भले गांठ में पैसा ना हो उन्हें पालने को. सो लो भर मुट्ठी से भी ज़्यादा. जो काम आता है...करो और चलती बनो. सो ठीक ही कर रहे हैं न हम?' सौम्या कोशिश करने पर भी जब कनसीव नहीं कर पाती तो अंत में सोच विचार कर सरोगेट मदर का विकल्प वह चुनती है. क्योंकि समय उसके पास नहीं है – न जन्म देने का, न पालने का. कहानी के अंत में मां सुनंदा के मन में उभरे प्रश्न मुंह बाये हमारे मन में भी उभरते हैं – 'क्या अब अपने बच्चे को अपना कोख़ जाया कहना और करना भी ख़त्म हो रहा है?

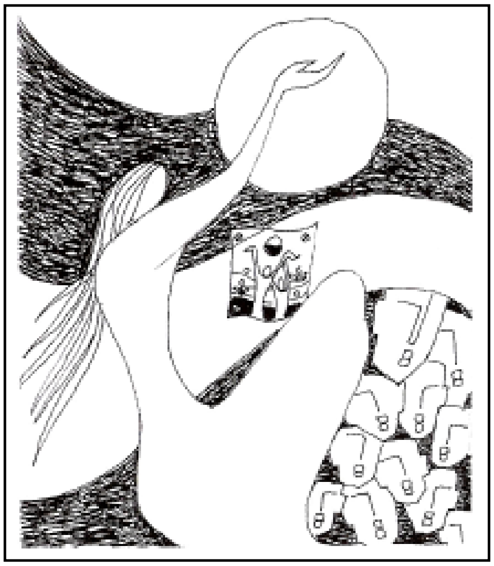

'और जंग अभी जारी है', 'अधिकार', 'देना-पावना' सदृश कहानियों में प्रौढ़ स्त्री की जो छवि है वह एक अधिकार चेतस आधुनिक स्त्री की है. वह अपनी शालीनता और गरिमा की रक्षा तो करती है पर जब सामने वाला अपनी सारी हदें पार कर लेता है तो वह मौन सब कुछ सहती नहीं जाती. उसका मुखर प्रतिवाद न्यायसंगत है. नयी पीढ़ी की परले दर्जे की स्वार्थपरता, संवेदनहीनता व आत्मरति उन्हें इतना पस्त करती है कि वे खरे-खरे शब्द उनके मुंह से निकल ही पड़ते हैं जिनमें बुढ़ापे की थकान है, शोषण से उपजी वितृष्णा है और अपने 'स्व' के प्रति सजगता है. अगर नयी पीढ़ी संवेदनशून्य हो वरिष्ठ पीढ़ी को निचोड़ती ही जायेगी तो यह विस्फोट होगा ही.

'मुक्ति' कहानी जिस विचार को केंद्र में रखकर अपना ताना-बाना बुनती है वह है – 'गुफ़ा से निकलकर पहला आदम पूर्णतः स्वच्छंद, बिना किसी नियम, विवाह के, क्या वहीं लौट रहा है?' कहानी में रेशमा है जिसे उसका मिस्टर राइट तो नहीं मिला पर वह मां बनने का सुख नहीं छोड़ना चाहती. एक बच्ची को गोद ले वह अपनी ममता उस पर लुटाती है तो दूसरी तरफ अनु है जो अपने बच्चे को अपनी ही कोख़ में पलने देना चाहती है. अपनी गहरी लालसा पूरी करने के लिए आधुनिक टेक्नॉलोजी की मदद से मनचाहा स्पर्म अपनी कोख़ में धारण करने का विकल्प वह चुनना चाहती है ताकि मनचाही संतान भी मिल जाये और पति के साथ एडजेस्टमेंट का झंझट भी न रहे.

संग्रह की अंतिम कहानी 'मेरा घर' स्त्री मन की उस आदिम लालसा को प्रत्यक्ष करती है जिसके अंतर्गत वह रेत के घरौंदे को भी अपना घर मानकर उसे अपने जीवन से जोड़ती है. कैसा है यह स्त्री का मन! जानलेवा ल्युकेमिया से जर्जर तन मन में जितनी चिंता अपनों की है उतनी ही चिंता अपने घर की भी. वहां पति, बेटा, बहू, घर सभी में बंटी है समान आसक्ति. क्या अनजाने ही घर भी हमारा सबसे अधिक प्रियजन बन निर्जीव से सजीव हो उठता है.

'ये दिन....वे दिन' कहानी संग्रह की एक विशेषता यह भी है कि इसमें चित्रकार उषा भटनागर कहानीकार उषा भटनागर की सहयात्री हैं. उनकी अनेक पेंटिंग्स से सजी प्रस्तुत कृति हाथ में आते ही पाठक को आकर्षित करती है. पुस्तक का आवरण मानो उसके

कथ्य का संकेत है. भीतर के पृष्ठों पर भी अनेक सुंदर पेंटिंग्स कहानी के कथ्य को उभारती भी हैं.

उनकी कहानियों में वर्तमान स्त्री जीवन की भिन्न-भिन्न कक्षा पर खड़ी है पर वे सभी आधुनिक स्त्री के मनोभावों की प्रतीक हैं, फिर वह चाहे कच्छ के सुदूर भूकंपग्रस्त गांव की रामदेई हो, चाहे नयी-नयी सास बनी सुमिता हो या चाहे 'मुक्ति' की रेशमा और अनु हो, या अपनी ज़मीन तलाशती अश्विनी हो, एक सीमा आने पर वे सभी अपने अधिकारों की रक्षा भी करती हैं. उनकी जिजीविषा प्रभावपूर्ण है और सहज भी. नारी और नारीमन उषा भटनागर का प्रिय विषय है – चित्रकारी में भी कथालेखन में भी. और उसका सधा हुआ निर्वाह उनकी प्रस्तुत कृति की विशेषता है.

**बी/६०४, वास्तु टॉवर, एवरशाइन नगर,**
**मालाड, मुंबई-४०० ०६४**
**मो.९८९२१३८८४६**

## देश-विदेश की समस्याओं से जूझती कहानियां

*डॉ. रूपदेवगुण*

**'कदंब की छांव'** (क. सं.) **: कमल कपूर**
**प्रकाशक :** राजदीप प्रकाशन, महरौली,
नयी दिल्ली-११००३० **मू.** २५० रु.

कमल कपूर हरियाणा की प्रतिष्ठित महिला कहानीकारों में से एक हैं. एक जागरूक लेखिका की भांति वे देश-विदेश में फैली सामाजिक कुरीतियों से भलीभांति परिचित हैं. 'कंदब की छांव' कहानी-संग्रह में उनकी उन्नीस कहानियां हैं जो किसी न किसी समस्या से जूझ रही हैं.

कहानी-संग्रह के मुख्य शीर्षक से संबंधित कहानी 'कदंब की छांव' – बुज़ुर्गों को अपनाना चाहिए. इस उद्देश्य के अंतर्गत लिखी गयी है. 'धागे प्रेम के' विजातीय विवाह के पक्ष में लिखी रचना है. 'दहलीज का दिया' – विदेश न जाकर अपने देश में रह कर माता-पिता की सेवा करनी चाहिए – इस मूल भावना से ओत-प्रोत है. 'काहे आयी बिदेस' में देश-विदेश की संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है.

'शरद-चंद्रिका की रात' में प्रेम भावनाओं के स्थान पर वादे को अधिक प्रश्रय दिया गया है. 'उजालों का सफ़र' बच्चों के मनोविज्ञान पर आधारित रचना है. 'लॉस वेगस की रात' एक बढ़िया प्रेम कहानी है. 'अनुत्तरित प्रश्न' बालश्रम को लिये हुए हैं. 'श्याम रंग' शादी में धोखे की बात करती है. 'सच तो यह है कि ... ' कहानी करवा चौथ और जन्मदिन की नयी परिभाषाएं खोजती है. 'शब्दः निःशब्द' – धर्म भाई-बहिन को समाज नहीं मानता – इस तथ्य को लिये हुए है. 'और चांदनी सो गयी' स्वाति के बढ़िया चरित्र से संबंधित एक अच्छी कहानी है. 'सुलगते सवाल! समलैंगिकता जैसे ज्वलंत प्रश्न को पाठकों के सम्मुख उठाती है. 'मां : एक अहसास' माता-विमाता की गाथा सुनाती है. 'एक नाव के यात्री' विदेश की अविवाहित मां को लेकर लिखी गयी है.

कहानी का शीर्षक तोरण की तरह होता है जिसका सुसज्जित होना अत्यंत आवश्यक है. अधिकतर कहानीकार कहानी के शीर्षक की ओर विशेष ध्यान नहीं देते. कमल कपूर की कहानियों के शीर्षक अत्यंत आकर्षक व विषयानुरूप हैं. 'काहे आयी बिदेस' शीर्षक काव्यात्मक है, 'एक नाव के यात्री' कल्पना प्रधान है, 'शरद-चंद्रिका की रात' प्रकृति को लिये हुए है. 'एक महकती सुबह' सौंदर्य से ओत-प्रोत है, 'उजालों का सफर' उर्दू को प्रश्रय दिये हुए है. 'कदंब की छांव' तथा 'दहलीज का दिया' प्रतीकात्म हैं, 'और चांदनी सो गयी' मानवीकरण पर आधारित है. ये सभी शीर्षक उनकी कहानियों को अति सुंदर बनाते हैं.

कहानीकार का घुमक्कड़ होना अत्यंत आवश्यक होता है. कमल कपूर ने जहां कई यात्राएं अपने देश में की हैं, वहां विदेश में भी वे भ्रमण कर चुकी हैं. इसलिए उनकी कहानियों के कथ्य सीमाओं को लांघते हुए दिखाई देते हैं.

कमल कपूर ने अपनी कहानियों में भारतीय संस्कृति व सभ्यता के प्रति समर्पित भाव दिखाया है

किंतु अगर उन्हें अपनी सभ्यता में कोई दोष परिलक्षित हुआ है तो उसकी ओर भी उन्होंने निःसंकोच संकेत किया है.

कमल कपूर की कहानियों का आरंभ भी बहुत बढ़िया होता है. 'एक महकती सुबह' की प्रारंभिक पंक्तियां इस प्रकार हैं – मैं डायरी लिखती हूं. रोज़ तो नहीं... किसी ख़ास क्षण में. जब दर्द या ख़ुशी संभाले न संभले तो डायरी ही मेरी सबसे सच्ची व वफ़ादार दोस्त साबित होती है.

लेखिका ने कई कहानियों में प्रकृति का अत्यंत सुंदर वर्णन किया है. जैसे 'शरद-चंद्रिका की रात' में – कैसी हसीन थी यह पूरे चांद की रात. कजरारे से मखमली आसमान पर हीरक-कणों से झिलमिलाते सितारों के बीच टंका उजास से भरा, गोरा-गोरा चांदी-सा चमकीला शरद-पूर्णिमा का चांद पूरे मनोयोग से चांदनी का अमृत लुटा रहा था.

कहानियों के वार्तालाप रोचक तथा कथा को आगे बढ़ाने वाले भी हैं – जैसे 'लॉस वेगस की रात का यह वार्तालाप दृष्टव्य है – 'यहां कैसे आ गये?'

'लंबी कहानी है, फिर कभी सुनाऊंगा और आप कैसे आयीं?'

'आपकी कहानी से भी लंबी यही कहानी होगी मेरी! शायद कभी न बता पाऊं.'

'लॉस वेगस की रात' में आपसी बातचीत में श्रृंगार रस है पर साथ-साथ जीवन के कटु दृश्य भी परिलक्षित होते हैं. कमल कपूर की कहानियों में वर्णनात्मक शैली भी देखने योग्य है. उनका चरित्रांकन पात्रों को सजीवता प्रदान करता है. 'शब्दः निशब्द' में पत्रात्मक शैली है. भाषा पात्रानुसार है. कहीं-कहीं पर अलंकृत भाषा का प्रयोग भी हुआ है. जैसे, 'उसकी कंाच की चूड़ियों-सी खनकती हंसी, शब्द-मिश्री सी मीठी बातें और उसका गुलाबी कमल-सा खिला चेहरा,' में उपमा अलंकार की अद्‌भुत छटा है.

कहानियां अत्यंत रोचक हैं. कहीं-कहीं जिज्ञासा के भी दर्शन होते हैं. पात्रों के नाम अधिकतर आधुनिक हैं जो कहानियों को सुदृढ़ बनाते हैं.

मुझे अब विश्वास है कि कमल कपूर अगर लगातार लिखती रहीं तो एक दिन उनका नाम हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कहानीकारों में होगा. मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं.

**१३/६७६, गोविंद नगर,**
**सिरसा (हरि.)-१२५०५५**
**मो. ९८१२२३६०९६**

# संकारात्मक दृष्टिबोध की कहानियां

रामरतन यादव

**'ओपेरा हाउस'** (का. सं.) **: अशोक कुमार प्रजापति**
**प्रकाशक :** वातायन मीडिया, अयोध्या अपार्टमेंट, फ्रेज़र रोड़, पटना-८०००१. **मू.** २५० रु.

कथासृजन की अपेक्षित शर्तों के प्रति सतर्क रहते हुए सामाजिक जीवन की कतिपय परिचित एवं अपरिचित स्थितियों के साथ अनेक संघर्षशील संदर्भों को आज के जिन कथाकारों ने एक स्पष्ट दृष्टिबोध के साथ अपनी कहानियों में बरतने का काम किया है, उनमें अशोक प्रजापति भी शामिल हैं. सामाजिक परिदृश्य और मानवीय संवेदना को इस कथाकार ने गहरे तक उकेरने का काम किया है.

अशोक प्रजापति की नवीनतम कृति 'ओपेरा हाउस' में उनकी तेरह कहानियां संग्रहीत हैं. ये सभी कहानियां गहन अनुभव के ताने-बाने में बुनी हुई हैं. ये कहानियां हमें जीवन के यथार्थ से जोड़ती हैं. मनुष्य को उसकी समग्रता में समझने के मामले में ये कहानियां मददगार हैं. अशोक प्रजापति बड़े सहज भाव से बिना किसी उकताहट के उन स्थितियों को अनावृत करते हैं जिनके भीतर समय का सच छिपा है. एक विचारणीय कहानी का सृजन अपने परिवेश, अपने समय एवं समाज की चिंतन-धारा के बूते ही होता है. इसलिए एक जिम्मेवार कहानीकार इन कथा तत्वों को गहरे तक समझकर पूर्व की अवधारणाओं का सुविधा और ज़रूरत के हिसाब से अनुसरण और अतिक्रमण भी करता है. अशोक प्रजापति की कहानियों में इन दोनों ही स्थितियों को देख पायेंगे. बाज़ार के

विस्तार ने जिन विकृतियों को हमारे सामने चुनौती के रूप में खड़ा किया है उसे इस कथाकार ने गहरे तक देखा-समझा है और उसके प्रतिरोध में अपनी कहानियों को सामने रखा है. यह एक लेखक का रचनात्मक प्रतिरोध है. अनियंत्रित आवारा पूंजी के बल पर विकास की जो नयी धारा इन दिनों बह रही है उसमें नैतिक मूल्यों से नियंत्रित जीवन के प्रति हमारी आस्था कमज़ोर हुई है. लोकतंत्र का लंपटीकरण इसी आवारा पूंजी से संचलित संस्कृति का परिणाम है जहां भ्रष्टाचार हमारे अस्तित्व की जड़ों को दीमक की तरह खोखला करने लगा है. इन दिनों हमारे इर्द-गिर्द इतने दावपेंच हैं कि जीना एक जटिल प्रक्रिया से गुज़रने जैसा है.

अशोक प्रजापति ने परंपरागत समाज के विघटित होते जाने और उसकी जगह जो नया बनिस्बत जटिल समाज निर्मित हो रहा है, उन दोनों के बीच के गैप को बारीक़ी से अभिव्यक्त किया है. दरअसल चीज़ों को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने की अदम्य लालसा से अभिप्रेरित हैं इस संग्रह की अधिकांश कहानियां.

यह कथाकार कहीं प्रेमचंद की कथा परंपरा से जुड़ता है तो कहीं जयशंकर प्रसाद से तो कहीं कथासृजन की बिलकुल आधुनिक संरचना के प्रति आकर्षित है. वैसे इस संग्रह की सभी कहानियां जीवनोन्मुखी संवेदना से सिक्त हैं.

संग्रह की जो कहानियां हमें कहीं गहरे तक छूती हैं. उनमें मुआवज़ा, फ़ैसला, शिविर से उम्मीदें, शिनाख़्त, चार धूर ज़मीन, किराये का मकान, ओपेरा हाउस, होपोन-हातिम, कार्लसन की बेटी तथा फेसबुक-ट्री इत्यादि प्रमुख हैं. ये सब विचारणीय सामाजिक मुद्दों पर आधारित कहानियां हैं.

'फ़ैसला' कन्या भ्रूण हत्या की बढ़ती प्रवृत्ति के साथ-साथ लाला दयाराम के घिनौने चरित्र को उजागर करती है. 'मुआवज़ा' संयोगवश घटित घटना पर आधारित होने के बावज़ूद जीवन के यथार्थ से जुड़ती है. इन दिनों खाये-पीये अघाये लोगों के लिए बाबाओं द्वारा योग शिविर लगाकर ख़ूब माल बटोरने की परंपरा विकसित हो रही है. इस सच से रूबरू करती है 'शिविर से उम्मीदें'. 'होपेन-हातिम, जंगल माफ़िया की कारगुज़ारियों पर केंद्रित है. इस कहानी में अशोक प्रजापति ने प्रकृति के मोहक चित्रण के साथ कथारस प्रवाहित किया है. 'किराये का मकान' महानगरीय जीवन में मकान की चाहत में जूझते लाखों परिवारों की व्यथा-कथा है. यह सच है कि आज की इस दुनिया में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो किराये के मकान की व्यथा को झेलते हुए ही इस संसार से कूच कर जाते हैं.

'ओपेरा हाउस', 'शिनाख़्त' तथा 'फेस बुक ट्री' में आधुनिक समाज की स्थिति को चित्रित किया है. 'फेस बुक ट्री' और 'कंधा और कंगन' तथा 'चार धूर ज़मीन' में लेखक की सोच और संवेदना का उत्कर्ष मौजूद है.

एक-दो कहानियों में विवरण का बोझ भी है जिससे कथा रस का प्रवाह योग बाधित होता है. वैसे नये रचनाकारों में विवरण का व्यमोह तो होता ही है. लेकिन संपूर्णता में कहें तो अशोक प्रजापति का गझिन सामाजिक सरोकार हमें संतुष्ट करता है. इनके पास कथा सृजन की सकारात्मक दृष्टि और सहज भाषा भी है. इनकी कथा शैली की विशेषता 'चित्रात्मकता' है. इस कथाकार में मूल्यों के संरक्षण और पोषण की आकांक्षा है. बेशक 'ओपेरा हाउस' एक पठनीय और संग्रहनीय कृति है.

**मकसूदपुर, पो.-फतुहा (पटना)-८०३२०१**

## पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

**कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. – संपादक**

लघुकथा

# अपना-अपना आकाश

✍ पुष्पा राव

पूरे घर में पांच दरवाज़े. एक बाहर का मुख्य दरवाज़ा जिसका बंद रहना न्याय संगत है. बाक़ी चार और जिसमें एक बेटे-बहू के कमरे का, दूसरा तीन साल की बच्ची के कमरे का. यहीं उसकी आया भी दोपहर का आराम करती है और रात की सुखद नींद सोती है. तीसरा, मेरे कमरे का और चौथा, चौके का. एक पुरानी नौकरानी है पचपन वर्षीया अधेड़ा और दूसरी अठारह-बीस साल की लड़की जिसके कान में हमेशा मोबाइल चिपका रहता है. यदि कान पर न हो तो लगातार पान की दुकान का एहसास दिलाने वाले हिंदी फ़िल्मों के गाने लाउड स्पीकर पर बजते हैं. एक मेरे दरवाज़े को छोड़कर बाकी सब अधिकांशतः बंद ही रहते हैं.

बीस साल पहले का एक अनुभव भूला नहीं जाता. कलाई पर कुछ ऐसा 'टेंडन स्ट्रेन' हुआ कि ठीक होने ही नहीं आ रहा था. गोलियां खायीं 'वॉवेरॉन' से लेकर आयुर्वेद का 'झाड़पोला' मल्हम और केवल आगरे में मिलने वाला 'रुटा ऑयल' सभी उपयोग निरर्थक रहे. हार कर डॉक्टर ने कहा लगता है ऑपरेशन करके ही इस तनाव को निकालना होगा. एक और कोशिश कर लेते हैं 'कॉर्टिजोन' का इन्जेक्शन. दर्द ज़रूर होगा. मैंने बड़े साहस व उत्साह से यह सोच कर हामी भर दी कि कितना भी दर्द हो ऑपरेशन के झंझट से तो बच जाऊंगी. पर घर पहुंचते तक तो लगा हाथ कलाई से टूट कर, गिर पड़ेगा. ऐसा दर्द कि हाथ हिलाना भी कठिन. दोपहर के तीन बजे का समय होगा. जैसे, तैसे घंटी बजायी. न दरवाज़ा खुला न अंदर कोई हरकत होती दिखी. कैसे भी पर्स का पट्टा मुंह में दबाकर अपना चाभी का गुच्छा निकाला. एक हाथ से ही खींच तान कर दरवाज़ा खोला. अपने कमरे में अधमरी सी लेट गयी. शाम होते सब अपने रूटीन कामों में लग गये. दोष और भी किसी को कैसे दूं क्योंकि मैंने ही किसी को नहीं बताया था कि डॉक्टर के पास जा रही हूं. और न असह्य दर्द के कारण चीख़ पुकार की थी.

याद कौंध गयी अपने छोटे से घर की, दो कमरों वाले घर में तीनों बच्चे बड़े हुए. पढ़ाई पूरी की. मेहमानों का आना-जाना भी बरक़रार रहा. सबको दिख जाता था कौन घर में हैं कौन बाहर गया है. किसने खाना खाया है किसने नहीं. धन्य है यह आज का युगधर्म जहां सबको अपने लिए 'स्पेस' चाहिए जो बंद दरवाज़े के अंदर उनकी अपनी है. जिसमें किसी को दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं.

✉ कल्पक हाइट , ७वां तल, २९ए, पैरी क्रॉस रोड,
बांद्रा (पश्चिम), मुंबई- ४०००५०.
मो. ९८२०६२३०३०

## ग़ज़ल

✍ नरहरि 'अमरोहवी'

मिलती है कांटों में रह कर भी ख़ुशी तू आज़मा,
मुस्कुराते फूल को पहचान ख़ुशबू आज़मा ।

देखनी हैं जो तुझे ठंडी हवा की शोख़ियां,
ख़ुशनुमा चेहरे पे कुछ बेचैन गेसू आज़मा ।

चाहता है जीतना तू आदमी का दिल अगर,
ज़िंदगी सच्ची लगे ईमां को हर सू आज़मा ।

बेबसी कितनी थी एक गहरी नदी की इस जगह,
रह गयी बंजर ज़मी घाटों का बालू आज़मा ।

जानना इन अनछुये रंगों को अब मुश्किल नहीं,
तितलियों के पंख पर लिक्खा है जादू आज़मा ।

✉ ऑर्किड, एच-८०३,
वैली ऑफ फ्लॉवर्स, ठाकुर विलेज़,
कांदिवली (पू.),मुंबई-४००१०१.
मो. ९३२२१२५४१६

# संस्कृति संरक्षण संस्था (पं), मुंबई

## : संस्था की गतिविधियां व उद्देश्य :

भारत की सामासिक संस्कृति, साहित्य, कला, भाषा तथा स्वस्थ परंपराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ***संस्कृति संरक्षण संस्था*** की स्थापना की गयी है.

**संस्था की कुछ नियमित गतिविधियां इस प्रकार हैं:**

१. संगीत की कक्षाएं नियमित चलाना.

२. संगीत-नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना.

३. संस्था के भाषा-विभाग द्वारा ***"कथाबिंब"*** त्रैमासिक कहानी पत्रिका का नियमित प्रकाशन. पांच वर्षों से पत्रिका ने, वर्ष २००७ के प्रारंभ में दिवंगत हुए हिंदी साहित्यकार पद्मविभूषण **श्रीयुत कमलेश्वर** की स्मृति में अपने वार्षिक कहानी पुरस्कार का नाम ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"*** रखा है. ये पुरस्कार पत्रिका में पूरे वर्ष में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमतों के आधार पर दिये जाते रहे हैं. ***"कथाबिंब"*** किसी भी भाषा की एक मात्र पत्रिका है जो इस प्रकार का आयोजन करती है.

४. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन, जैसे : कवि-सम्मेलन व काव्य-सृजन प्रतियोगिताएं.

५. हिंदी-पुस्तकालय प्रबंधन / संचालन.

६. संस्था की गतिविधियों को और अधिक अच्छे ढंग से चलाने के लिए ज़मीन प्राप्त करने की दिशा में प्रयास जारी हैं.

७. जनसामान्य को सीधे प्रभावित करने वाले विषयों पर समय-समय पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं का आयोजन. सर्वप्रथम, १३ अक्तूबर २००७ को संस्था द्वारा आयोजित **"कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी"** विषय पर आयोजित संगोष्ठी को अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई. इसी तरह **"भारतीय ऊर्जा समस्या : सुझाव व समाधान"** (१५ फरवरी २००९), **"चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार"** (२७ फरवरी २०१०), **"शिक्षा का वर्तमान स्वरूप एवं परिवर्तन की दिशा"** (१२ मार्च २०११), **"राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति"** (३ फरवरी २०१३) विषयों पर भी संगोष्ठियां आयोजित की गयीं. कहना न होगा सभी को पर्याप्त सराहना मिली.

८. देश में उपलब्ध चिकित्सा के निदान व उपचार की अन्य पद्धतियों जैसे, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा व निदान आदि के विकास में सहयोगी बनना.

९. वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने में सहयोगी होने का प्रयास. प्रत्येक वर्ष संस्कृत श्लोक प्रतियोगिता करना.

१०. भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर (संगणक) के प्रयोग को सत्वरता लाने के प्रयासों में सहयोगी बनना.

इन सभी प्रयासों के लिए हमारी संस्था को अलग-अलग भवनों की आवश्यकता है और ऐसे सेवाभावी सहयोगियों की आवश्यकता है जो हमें इतनी राशि प्रदान करें जिसे नियतकालिक निधि के रूप में जमा किया जा सके तथा अर्जित व्याज से हम अपनी गतिविधियों का संचालन किया जा सके.

**नोट : संस्था को आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अंतर्गत प्रमाणपत्र प्राप्त है. इसके अंतर्गत सभी दानदाता रियायत के अधिकारी होंगे.**

## संपादक : डॉ. अरविंद

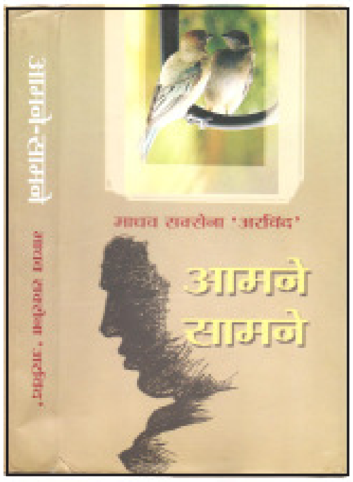


मूल्य : ४०० रु.

# आमने-सामने

*("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित २२ पुरुष-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)*

: प्रकाशक :
**भावना प्रकाशन**
१०९ ए, पटपटगंज, दिल्ली-११००९१.
फोन : २२७५६७३४,
मो ०९३१२८६९९४७

*"कथाबिंब"* के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे प्रकाशक से संपर्क करें.

---

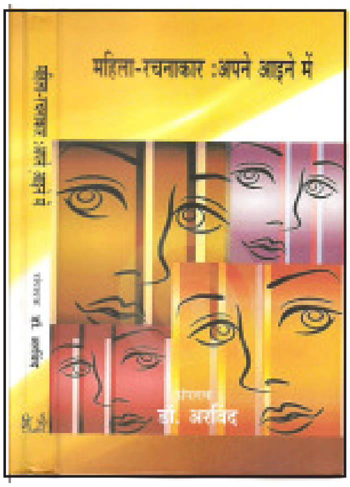


मूल्य : २५० रु.

# महिला-रचनाकार : अपने आइने में

*("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित १२ महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)*

: प्रकाशक :
**भारत विद्या निकेतन**
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

: एक मात्र वितरक :
**मानव प्रकाशन**
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

*"कथाबिंब"* के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे वितरक से संपर्क करें.
फ़ोन : ०३३-२२६८ ४८२२ व ०९८३१५ ८१४७९.